अनित्य

जीवन गृह गोधन नारी, हृदय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय -भोग छिन थाई, सुर धनु चपला चपलाई ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ - (जीवन गृह) जवानी एवं घर मकान(गोधन नारि) गाय, रुपया, पैसा तथा स्त्री (हृय गय) घोडा हाथी (अज्ञाकारी जन) नौकर, चाकर एवं मित्र कुटुम्बीजन (इन्द्रिय भोग) पांचो इन्द्रियों के विषय भोग (सुर धनु चपला चपलाई) इन्द्र धनुष एवं बिजली चपलता के समान(छिन थाई) ।ण मात्र स्थिर रहने वाले है।

भावार्थ - सांसारिक वस्तुओं में कूछ भी नित्य नहीं है। जो वस्तु अपनी प्रतीत होती है वही ।ण मात्र में पराई या विनाश को प्राप्त हो जाती है। दमकती हुई यौवन अवस्था, महुल, मकान, हाथी, घोडा, गाय, भैंस, धन, वैभव, स्त्री आदि कुटूंम्बी जन, नौकर चाकर, मित्र जन और पांचों इन्द्रियों के भोग यह सभइन्द्र धनुष या बिजली की चपलता के समान ।ण मात्र में विलय को प्राप्त हो जाने वाले है। मनुष्य अनित्यता में भी नित्यता खोजता है इसलिये शान्ति नहीं मिल पा रही है। भव्यात्माओं का कर्तव्य है कि संसार में अनित्यता का चिन्तवन कर शाश्वत रहने वाले निजात्म स्वरुप को प्राप्त करने का प्रयत्न करें।

प्रश्न १. अनित्य भावना किसे कहते है ?
उत्तर - संसार में कोई पदार्थ नित्य नहीं है, इस प्रकार के चिन्तवन को अनित्य भावना कहते है।

प्रश्न २. क्या संसार में कुछ भी नित्य नहीं है ?
उत्तर - स्त्री, पुत्र,मित्र,धन, यौवन आदि एवं इन्द्रियों के विषय भोग आदि कुछ भी नित्य नहीं है। देखते-देखते सभी विनष्ट हो जातें है, मात्र आत्म स्वरुप ही नित्य है।

प्रश्न ३. आत्मा नित्य कैसे है ?
उत्तर - आत्मा जन्म-मरण से रहित है और गुण पर्यायों से सहित है। शुध्द द्रव्यार्थिक नय से, शाश्वत स्वभाव से आत्मा नित्य रहता है।

प्रश्न ४. क्या ज्ञानादि नित्य नहीं है ?
उत्तर - मतिज्ञान श्रुतज्ञान आदि प्रारम्भ के चार (ज्ञान) नित्य नहीं है, मात्र केवलज्ञान नित्य है।

प्रश्न ५. धन सम्पत्ति कुटुम्बी जनों को नित्य मानना भूल है क्या ?
उत्तर - धन, वैभव, कुटुम्बीजन सब इन्द्र धनुष के समान ।ण मात्र में विलय को प्राप्त हो जाने वाले है। अत: शरीर, धन, परिजन आदि को नित्य मानना भूल है।

प्रश्न ६. इन्द्रिय भोग नित्य है क्या ?
उत्तर - इन्द्रिय भोग नित्य नहीं है, इन्द्र धनुष के समान ।ण भंगुर दु:खद ही है।

अशरण

सुर असुर खगादिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दलेते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावे कोई ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ - (सुर असुर खगादपि जेते) इन्द्र, नरेन्द्र और खगेन्द्र आदि जो-जो है (ते) उन सबको(हरि ज्यों मृग) सिंह जिस प्रकार मृग को नष्ट कर देता है (काल दले) उसी प्रकार इन्द्र आदि को काल नष्ट कर देता है (मणि मन्त्र तन्त्र बहु होई) चिन्तामणि आदि मणि, रक्षा करने वाले मन्त्र टोटके वगैरह अनैकों प्रकार के है(परन्तु)(मरते कोई बचावे न) मरते समय जीव को कोई बचाने वाला नहीं है ।

भावार्थ - जीवन में किसी न किसी की शरण हर प्राणी लेता है । रोगी वैद्य की शरण लेता है, आपत्ति काल में मित्र और परिजनों की शरण लेता है, वचपन में माता

पिता की एवं जवानी में धन और विषय कषायों की शरण, बुढापे में बहू-बेटे और लाठी की शरण परन्तु वास्तविकता यह है कि कोई किसी के लिये शरण नहीं है । आयु कर्म आणी होने पर बडे-बडे डाक्टर एवं विशेष औषधियॉ भी किसी को बचाने में सक्षम नहीं हो पातीं । मन्त्र, तन्त्र, ज्योतिष आदि सभी विद्यायें मरण समय विफल हो जाती है । अत: सिवाय सच्चे देव, शास्त्र, गुरु और अपने आत्म गुणों सिवाय के विश्व में कोई शरण नहीं है ।

प्रश्न १. अशरण भावना किसे कहते है ?
उत्तर - संसार में वास्तव में कोई किसी के लिये शरण नहीं है इस प्रकार का चिन्तवन करना अशरण भावना है ।

प्रश्न २. क्या मन्त्र, तन्त्र औषधि आदि संकट में सहायक नहीं है ?
उत्तर - पुण्य कर्म के उदय में मन्त्र,तन्त्र, औषधि आदि सभी सहायक बन सकते है, पाप कर्म के उदय में या आयु कर्म समाप्त होने पर यह सभी विफल हो जाते है ।

प्रश्न ३. क्या इन्द्र आदि देवों को काल समाप्त कर देता है ?
उत्तर - जिस प्रकार सिंह, हिरण आदि जानवरों को नष्ट कर देता है, उसी प्रकार काल रुपी सिंह इन्द्र आदि सभी प्राणियों को आयु कर्म के।ीण होने पर समाप्त कर देता है ।

प्रश्न ४. मन्त्र किसे कहते है ?
उत्तर - जिसके द्वारा मनचाहें कार्यो की सिध्दी की जाय या आत्मा का आदेश- निजानुभव जाना जाय अथवा परम पद में स्थित पंचपरमेंष्टियों का सत्कार किया जाय या महत्व पूणा रहस्यमय शब्दात्मक वाक्यों को मन्त्र कहते है ।

प्रश्न ५. तन्त्र किसे कहते है ?
उत्तर - मन्त्र और यन्त्रों को भोज पत्र पर लिखकर शरीर आदि पर धारण करन या वृक्ष विशेष को विशेष समय में आमन्त्रण देकर तोडकर लावे और फिर उसकी शुध्दि करकें अनेंकों इ्ष्ट कार्यो की सफलता के लिये प्रयोग करना इसी को तन्त्र कहते है ।

चहुँ गति दु:ख जीव भरै है, परिवर्तन पंच करे हैं ।
सब विधि संसार असारा, यामें सुख नांहि लगारा ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ - (जीव चहुँगति) यह जीव चारों गतियों में (दु:ख भरै हैं) दु:ख प्राप्त कर रहा है (और) (पंच परिवर्तन करै है) द्रव्य,क्षेत्र,काल, भव भाव इस प्रकार पंच परावर्तन कर रहा है (सब विधि संसार असारा)सभी प्रकार से संसार असार है(यामें)संसार में (लगारा)लेस मात्र भी(सुख नहिं)सुख नहीं है ।

भावार्थ -मनुष्य तिर्यञ्च देव और नरक इन चारों गतियों की चौरासी लाख योनियों में द्रव्य, ।ित्र, काल भव, भाव इस प्रकार केपांचों परावर्तनों को करता हुआ प्रतिक्षण दु:ख सागर में डूबा रहता है । संसार में सर्वत्र दृष्टि उठा करकेदेखने पर कही भी सुख नजर नहीं आता । कोई शरीर से दुखी है, कोई पैसे केअभाव में, कोई पुत्र केअभाव में , कोई कुपुत्रों केसदभाव में, कोई पत्नी केवियोग में तडफ रहा है, तो कोई कुल्टा पत्नी केसंयोग में पश्चाताप कर रहा है । कोई पाप कर्म केउदय से दर

दर भटक रहा है, कोई कषायों केकारण बैर विरोध रुपी ज्वा ला में जल रहा हे । कोई छल कपट, ईर्ष्या, एक दुसरे की नीचा दिखने की भावना से बैचेन है तो कोई मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र केकारण संसार सागर में गोता खा रहा है । अत: संसार सभी प्रकार से केले स्तम्भवत असार है । ज्ञानी भव्य आत्म । ऐसे संसार स्वरुप को समझकर रत्नत्रय रुपी नौका में बैठकर मोक्षमार्ग की ओर अग्रसर हो जाते है ।

प्रश्न १. संसार भावना किसे कहते है ?
उत्तर - पंच परावर्तन रुप भ्रमण एवं लोक में होने वाले जन्म-मरण आदि दु:ख स्वरुप संसार का पुन: पुन: चिन्तवन करते हुऐ संसार समुद्र से तिरने की भावना संसार भावना है ।

प्रश्न २. संसार में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख है क्या ?
उत्तर - रत्नत्रय केअभाव से संसार में सर्वत्र दु:ख ही दु:ख है ।

प्रश्न ३. क्या रत्नत्रय केसाथ ही संसार में सुख है ?
उत्तर - रत्नत्रय से विभूषित आत्मा संसार में रहता है, परन्तु उसकेअन्दर संसार नहीं है । वह जल में नाववत संसार में रहता है इसीलिये सुखी है ।

प्रश्न ४. परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - ज ीव क्रम से द्रव्य, ।ित्रादि रुप से जो चारों गतियों में परिणमन करता है अर्थात जन्म-मरण करता है उसे ही परावर्तन कहते है ।

प्रश्न ५. परावर्तन कितने है ?
उत्तर - परावर्तन पांच है । द्रव्य, ।ित्र, काल, भव और भाव ।

प्रश्न ६. द्रव्य परावर्तन किसे कहते है ?

उत्तर - जी व द्वारा लोक व्याप्त सुम्पूर्ण पुद्गल परमाणुओं को क्रमश: ग्रहण करने को द्रव्य परिवर्तन कहते है।

प्रश्न ७. क्षेत्र परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - सुमेरु पर्वत के नीचे स्तनाकार आठ प्रदेशों को छोडकर सम्पुर्ण आकाश के प्रदेशों पर क्रमश: अनन्त बार जन्म-मरण करने को ।ित्र परावर्तन कहते है।

प्रश्न ८. काल परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - उत्सर्पिणी आसर्पिणी काल के प्रत्येक समय में क्रमश: जीव के जन्म मरण करने को काल परावर्तन कहते है।

प्रश्न ९. भव परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - जीव के द्वारा संसार की समस्त पर्यायों क्रमश: परिणमन करने को भव परावर्तन कहते है।

प्रश्न १०. भाव परावर्तन किसे कहते है ?
उत्तर - जीव द्वारा मिथ्यात्व, पुण्य-पाप आदि रुप प्रत्येक विभाव परिणाम के परिणमन को भाव परावर्तन कहते है।

.१६५.

एकत्व

शुभ अशुभ करम फल जेते भोगे जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के है भीरी ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ - (शुभ-अशुभ कर्म जेते फल) शुभ और अशुभ कर्मो के जितने फल है(तेते) वह सभी (एक ही जिय) अकेले जीव ही(भोगे)भोगता है(संसार में) (सब स्वारथ के भीरी है) सभी प्राणी मतलव के साथी है (सुत दारा सीरी होय न)पुत्र स्त्री पाप कर्म के उदय में या मतलव निकल जाने के बाद बात नहीं पुँछते है।

भावार्थ - संसार का हर प्राणी निरन्तर शुभ या अशुभ कर्मों का आस्त्रव -बन्ध , मन वचन काय की कुटिलता, मिथ्यात्व एव कषाय के कारण करता रहता है। शुभ और अशुभ रुप इन सभी प्रकार के कर्मो का फल जीव स्वयं भोगता है। पुण्य कर्म के उदय में, स्त्री, पुत्र (कुटुम्बी जन) और मित्र सभी प्यार करते है। पाप कर्म के उदय में सभी विमुख हो जाते है, द्वेष करने लगते है, कोई किसी का साथ नहीं देता। खोटे कर्मो का फल जिस समय जीव को भोगना पडता है उस समय कितने संक्तिष्ट परिणाम होते है, जिन्हें रोकने में कोई सक्षम नहीं है। मुलत: सारांश यह है कि यह जीव अकेला ही है, अपने कर्मो का फल अकेला ही भोगता है। न कोई साथ आया है, न कोई आथ जायेगा। इस बात का अपने मन में सुदृढ निर्णय करके एकत्व विभक्त शुध्दात्म स्वरुप की प्राप्ति की भावना ही एकत्व भावना है।

.१६६.

प्रश्न १. एकत्त्व भावना किसें कहते है ?

उत्तर - संसार में सभी रिश्ते मतलव केहै, समय पर कोई साथ देने वाला नहीं है, सुख-दुख हमें ही भोगने है, ऐसा चिन्तवन करना एकत्व भावना है।

प्रश्न २. शुभ कर्म किसे कहते है ?
उत्तर - जिस कर्म केउदय से इन्द्रिय जन्य सुखों की उपलब्धि हो उन्हें शुभ कर्म कहते है।

प्रश्न ३. अशुभ कर्म किसे कहते है ?
उत्तर - जिस कर्म केउदय से सांसारिक सुख ने मिले, इष्ट वियोग अथवा प्रतिकुल संयोग मिलते रहें उसे अशुभ कर्म कहते है।

प्रश्न ४. क्या कोई शुभ अशुभ कर्म बॉट सकता है ?
उत्तर - अपने -अपने शुभ और अशुभ कर्मो का फल जीव स्वयं ही भोगता है, कोई भी किसी केकर्मो में बटवारा नहीं कर सकता है।

प्रश्न ५. संकट में कोई काम आता है क्या ?
उत्तर - विपत्ति आ जाने पर संसार में कोई काम नहीं आाता। और की तो क्या, अर्धान्गिनी भी मतलव की पूर्ति होने पर साथ छोड देती है। संकट का सामना यह जीव अकेला ही करता है।

जल पय ज्यों जिय तन मेंला, पे भिन्न भिन्न नहिं मेला।
तो प्रगट जुदे धन धामा, क्यों ह्वै इक मिल सुत रामा ॥ ७ ॥
.१६७.

अन्वयार्थ - (जल पय ज्यों) जल और दुध जिस प्रकार (मेला) मिले हुए है उसी प्रकार (जिय तन) जीव और शरीर मिले हुये है(पै) फिर भी (भिन्न भिन्न) पृथक पृथक है(मेला नहिं) मिले हुयें नहीं है(तो प्रगट धन धामा जुदे) तब स्पष्ट रुप से ही धन मकानादि पृथक ही है फिर (सुत रामा) पुत्र और स्त्री (क्यों ह्वै इक मिल) यह अपने कैसे हो सकते है।

भावार्थ - सभी पदार्थ एवं वस्तुयें अपने पृथक अस्तित्व को लिये हुये लोक में अवस्थित है, मात्र दुध पानी वत संयोग दृष्टिगत हो रहे है। दूध दूध है और पानी पानी। ठीक इसी प्रकार द्रव्य कर्म, भाव कर्म तथा नोकर्मो से आत्मा अत्यन्त भिन्न है। विश्व केअनन्त पदार्थो में अकेला आत्मा ही चेतन है, शेष सभी जड है। जिस प्रकार दूध पानी एक प्रतीत होते है। उसी प्रकार शरी र एवं आत्मा एक प्रतीत होते है। जब कर्म और शरीर केसाथ ही आत्मा का एकत्व नहीं है तो पुत्र, स्त्री, मित्र, धन-धान्य आदि तो स्पष्ट रुप से ही अन्य है। उनमें किसी प्रकार काएकत्व नहीं है, इस प्रकार चिन्तवन करते हुये आत्माकेगुणों में अनन्यत्व एवं पर द्रव्य में अन्यत्व की भावन भाना अन्यत्व भावना है।

प्रश्न १. अन्यत्व भावना किसे कहते है?
उत्तर - आत्मा से सभी पदार्थ पृथक है और निज गुण अपृथक है ऐसा चिन्तवन करना अन्यत्व भावना है।

प्रश्न २. क्या शरीर और आत्मा अलग-अलग प्रलग है ?

उत्तर - शरीर और आत्मा दोनों अलग अलग जाति के द्रव्य है। वह कभी भी एक नहीं हो सकते।

प्रश्न ३. शरीर किसे कहते है ?

.१६८.

उत्तर - स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णादि वाले रुपी पदार्थ पुद्गल पिण्ड को शरीर कहते है।

प्रश्न ४. आत्मा किसे कहते है ?
उत्तर - चेतन अर्थात ज्ञान दर्शनादि गुण जिसमें पाये जावें उसे आत्मा कहते है।

प्रश्न ५. जब शरीर जी अपना नहीं है तो स्त्री, मित्र, पुत्र आदि को अपना क्यों मानते है ?
उत्तर - स्त्री , पुत्र, मित्र अपने से अत्यन्त भिन्न है परन्तु मोह के कारण जीव इन्हें अपने मानते है।

प्रश्न ६. शरीर पुत्र आदि को मानने से क्या हानि है ?
उत्तर - शरीर पुत्रदि सभी पर वस्तुयें अपने आत्म स्वरुप से अत्यन्त भिन्न है। इन सभी को अपना मानने से अनन्त गुणों से युक्त आत्म स्वरुप की प्राप्ति नहीं हो सकती।

अशुचि

पल रुधिर राध मल थैली, कीकस वसादि तें मैली।
नव द्वार बहें घिनकारी, अस देह करें किम यारी ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ - (पल रुधिर राध मल थैली) मांस, खून, पीव, मल,मूत्र आदि की यह (शरीर) थैली है (तथा)(कीकस वसादि तें मेली)हडडी चर्बी आदि घृणीत वस्तुओं से दुषित है(नव द्वार घिनकारी बहें) इस शरीर से अत्यन्त घृणा को उत्पन्न करने वाले नव द्वार बहते हैं(असदेह किम यारी करें) ऐसे शरीर से क्यों प्रीती करते हो।

.१६९.

भावार्थ - शरीर की अपवित्रता कौन नहीं जानता। कुधातुओं से इसका निर्माण हुआ है। मांस, रुधिर, पीव, मल, मुत्र आदि घृणित वृस्तुयें इसके अन्दर अवस्थित है। हडडी, चर्बी, नसों के जाल से निर्मित चमडी से ढका हुआ है। नव द्वार अत्यन्त घिनकारी बहते रहते है। शरीर में घाव आदि हो जाने पर इतनी दुर्गन्ध आती है कि स्त्री, पुत्र मित्रादी भी नाक सिकोड कर मुंह फेर लेते है। बृध्दावस्था या उल्टी दस्त प्रारम्भ हो जायें तो फिर कहना ही क्या। डा० तो क्या परिजन भी कहते है कि अब मर जाय तो अच्छा ही है, ऐसी अशुचि की खानी यह शरीर है। ज्ञानी आत्मा ऐसे शरीर से प्रीति नहीं करते। शरीर के पोषण और श्रृंगार में आपना समय नहीं गवाते। ऐसे अपने शरीर के अशुचिपने को समझ, शुचि आत्मा को प्राप्त करने की भावना भाना यही अशुचि भावना है।

प्रश्न १. अशुचि भावना किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर की अपवित्रता का चिन्तन करते हुये पवित्र आत्मा को प्राप्त करने की भावना ही अशुचि भावना है।

प्रश्न २. क्या शरीर अपवित्र है ?
उत्तर - हडडी, चर्बी, खून, मल-मुत्रादि से युक्त यह शरीर अपवित्र है, परन्तु रत्नत्रय सहित होने से अपवित्र शरीर भ्ी पवित्र कहा जाता है।

प्रश्न ३. शरीर से प्रीती किसकी होती है ?
उत्तर - आत्म स्वरुप को नहीं समझने वाले मोही अज्ञानी जीव की शरीर से प्रीती स्वाभाविक होती है।

प्रश्न ४. क्या सम्यग्दृष्टि जीव शरीर से प्री ती नहीं करते ?

.१७०.

उत्तर - सम्यग्दृष्टि जीव धर्म साधना के लिये एवं तपस्या के लिए शारीर को खिलाते पिलाते है, व्याधि ग्रस्त हो जाने पर औषधि भी कराते है। राग के उदय में श्रृंगार आदि भी करते है, परन्तु विषय पोषण के लिये शरीर से प्रीती नहीं करते क्योंकि उनकी प्रीति स्वानुभूति से ही जाती है।

प्रश्न ४. नव मल द्वार कौन - कौन से है ?
उत्तर - दो ऑख, दो नाक, दो कान, दो मल मूत्र के स्थान तथा एक मुख। इन ९ द्वारों के माध्यम से शरीर में से अत्यन्त घृणास्पद मल बहता रहता है।

आस्त्रव

जो योगन की चपलाई, तातें है आस्त्रव भाई।
आस्त्रव दुखकर घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेंरे ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ - (जो योगन की चपलाई)जो योगों की चंचलता है(भाई तातें आस्त्रव है)हे भव्यात्माओं उसी से आस्त्रव होता है (आस्त्रव घनेरे दुखकर) आस्त्रव अनन्त दुखों को देने वाले है(बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे) सम्यग्ज्ञानी जीव आस्त्रवों को छोड देते है।

भावार्थ - मन वचन, काय तीनों योगों की चंचलता से अर्थात चारों कषाय, पांचो पाप और राग-द्वेष मय प्रवृत्ति से निरन्तर कर्मो का आना और बंध जाना आत्मा के साथ्ं होता आ रहा है। इसी आस्त्रव या योगों की कुटिलता के कारण चिरकाल से आत्मा चारों गतियों में असहय वेदना को सह रहा है। यह आस्त्रव अत्यन्त अनिष्ट और अनन्त दु:खों का जनक है। इसलिये सम्यग्ज्ञानी भव्य आत्मा इन आस्त्रव का सर्वथा परित्याग करके स्व स्वरुप में अवस्थित होने का पुरुषार्थ करते है, यही आस्त्रव भावना है।

.१७१.

प्रश्न १. आस्त्रव किसे कहते है ?
उत्तर - मन, वचन, काय की राग द्वेषादि रुप चंचलता से आत्मा की ओर कर्मो का आना आस्त्रव है।

प्रश्न २. आस्त्रव आवना किसे कहते है ?
उत्तर - आस्त्रव को दु:ख एवं संसार का कारण जानकर उनसे बचने का चिन्तवन करना आस्त्रव भावना है।

प्रश्न ३. आस्त्रव केकितने भेद है ?
उत्तर - आस्त्रव केदो भेद हे। (१) शुभास्त्रव (२)अशुभास्त्रव।

प्रश्न ४. दोनों प्रकार केआस्त्रव छोडने योग्य है क्या ?
उत्तर - श्रावक की भूमिका केअनुसार अशुभास्त्रव तो त्याज्य है ही, लोकाचार सो शुभास्त्रव आचरणीय है परन्तु मोक्षमार्ग में प्रस्थान करने वाले शुध्दोपयोगी मुनिराज केलिये दोनों प्रकार का आस्त्रव सर्वथा त्याज्य ही है।

प्रश्न ५. योग किसे कहते है ?
उत्तर - जिनकेनिमित्त से कर्म आते है, ऐसे मन, वचन,काय को योग कहते है।

संवर

जिन पुण्य पाप नहिं कीना, आतम अनुभवचित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुन अव लोके ॥ १० ॥

.१७२.

अन्वयार्थ - (जिन पुण्य पाप नहिं कीना) जिन भव्य आत्माओं ने पुण्य पाप नहीं किया है(आतम अनुभवचित दीना) और मात्र आत्म अनुभव में ही अपना उपयोग लगाया है(तीनही आवत विधि रोके) ऐसे भव्य आत्माओं ने ही आते हुए कर्मो को रोककर (संवर लहे) संवर को धारण कर (सुख अवलोक) सच्चे सुख का अवलोकन किया है।

भावार्थ - संसार में दो प्रकार की आत्मा सर्वत्र नजर आनी है। एक वह जो संसार शरीर भोगों में ही अपना सर्वस्व मानकर लीन रहती है और एक वह जो आत्म स्वरुप को समझ कर संसार शरीर भोगों से विरक्त रहती है। जो भव्य आत्मा मिथ्या- त्व और कषाय को परित्याग करके तीनों योगों की एकाग्रता से पूण्य पाप का त्याग कर विशुध्द ज्ञानानन्द में लीन रहती है, वही भव्य आत्मा आते हुये कर्मो को भेद विज्ञान केबल से ही निजानन्द अर्थात अपने शाश्वत सुख का साक्षात्कार कर निजानन्द लेता है।

प्रश्न १. संवर भावना किसे कहते है ?
उत्तर - मन, वचन, काय की एकाग्रता से पुण्य पाप रुप आस्त्रवों को रोकने का प्रयत्न एवं स्वभाव सम्मुख दृष्टि करना ही संवर भावना है।

प्रश्न २. क्या पुण्य पा को छोडे बिना आस्त्रव नहीं रुकता ?
उत्तर - जब तक पुण्य पाप में रुचि रहेगी तब तक नियम से आस्त्रव होगा।

प्रश्न ३. पुण्य और पाप समान है क्या ?
उत्तर - आध्यात्मिक दृष्टि से पुण्य एवं पाप को समान कहा जाता है, सैध्दान्तिक दृष्टि

.१७३.

से पाप दुर्गति दु:खो का कारण है एवं सम्यग्दृष्टि का पुण्य स्वर्ग सुखों केसाथ मोक्ष सुख का भी कारण है।

प्रश्न ४. आत्मानुभव कब होता है ?
उत्तर - पुण्य पाप और आस्त्रव की गौणता में संवर के साथ स्वरुप का आश्रय लेने पर आत्मानुभव होता है।

प्रश्न ५. संवर केबिना सच्चा सुख मिल सकता है क्या ?
उत्तर - संवर केबिना सच्चा सुख असंभव है। आज तक जितने भी भव्य आत्माओं ने सच्चे सुख की प्राप्ति की है वह संवर पूर्वक ही की है।

प्रश्न ६. पूर्ण रुप से संवर किसकेहोता है ?
उत्तर - पुर्ण रुप से संवर शुध्दोपयोगी दिगम्बर मुनिराजों के ही होता है। आंशिक संवर सम्यग्दृष्टि ब्रती श्रावकों केभी सम्भव है।

निर्जरा

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावे, सोई शिव सुख दरसावे ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ - (निज काल पाय विधि झरना) अपना समय आने पर जो कर्मो की निर्जरा होती है (तासों) उस निर्जरा से (निज काज न सरना) अपना काम अर्थात आत्मोत्थान सफल होने वाला नहीं है(तपकर जो कर्म खिपावे)तपस्या करकेजो भव्य आत्मा कर्मो की निर्जरा करते है(सोई शिव सुख दरसावे)वे ही आत्मा मोक्ष सुख को प्राप्त करते है।

भावार्थ - अनन्त काल से सभी प्राणी प्रतिक्षण कर्म निर्जरा निरन्तर करते आ रहे है। फिर भी कारण क्या है कि आज तक निर्जरा का जो फल मोक्ष है उसकी प्राप्ति नहीं हो सकी है। निर्जरा दो प्रकार की है। एक वह जो स्वाभाविक होती आ रही है अर्थात कर्मो का समय पूरा हो जाने पर खिर जाना। दुसरी वह जो संवर पूर्वक तपस्या केबल से की जाती है, यही सम्यक निर्जरा है। इसी से शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है, आत्मा परमात्मा बनता है नर जन्म सार्थ्क होता है। रत्नत्रय के साथ योगों की एकाग्रता से संवर पूर्वक निर्जरा का चिन्तवन स्वाश्रितपना ही निर्जरा भावना है।

प्रश्न १. निर्जरा भावना किसे कहते है ?
उत्तर - तपस्या केबल से संवर पूर्वक संचित कर्मो केविमाचन करने की भावना तथा आत्म चिन्तवन ही निर्जरा है।

प्रश्न २. निर्जरा कितने प्रकार की होती है ?
उत्तर - निर्जरा दो प्रकार की होती है।
अकाम निर्जरा(२) सकाम निर्जरा।

प्रश्न ३. निर्जना किसे कहते है ?
उत्तर - पूर्व संचित कर्मो का आत्मा से पृथक होना निर्जरा है।

प्रश्न ४. अकाम निर्जरा किसे कहते है ?
उत्तर - कर्मो की अवधि पूर्ण होने पर समता सहित दु:खो को सहते हुए उनका छुटना अकाम निर्जरा है। यह सहज में सभी जीवों केहोती है, इसका कोई महत्व नहीं है।

प्रश्न ५. सकाम निर्जरा किसे कहते है?
उत्तर - संवर पूर्वक तीनों योगों की एकाग्रता एवं तपस्या आदि केबल से असमय में बिना फल दिये ही कर्मो का आत्मा केसाथ से विदा होना सकाम निर्जरा है। यह मोक्ष मार्ग में विशेष कार्यकारी है।

प्रश्न ६. क्या निर्जरा केबिना मोक्ष सुख की प्राप्ति नहीं होती ?
उत्तर - संसार में सभी कार्य संभव हो सकते है परन्तु संवर निर्जरा के बिना मोक्ष प्राप्ति संभव नहीं है।

प्रश्न ७. तप किसे कहते है ?
उत्तर - जिनके द्वारा आत्मा के विकार भावों को भस्म किया जाय और तपाकर आत्मा को कुन्दन सा खरा बनाया जाय उसे तप कहते है।

लोक भावना

किनहूँ न करै न धरै को, षड द्रव्य मयी न हरै को।
सो लोक मॉहिं बिन समता, दुख सहें जीव नित भ्रमता ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ - (किनहूँ न करै) इस लोक को किसी ने नहीं बनाया है (न धरै को) और न कोई धारण किये हुए है(षड द्रव्य मयी)यह तो छ: द्रव्य मय है (न हरै को)कोई भी इस लोक का अपहरण नहीं कर सकता(सो लोक मॉहि बिना समता)ऐसे लोक के अन्दर बिना समता भावके(जीव)यह जीव(नित भ्रमता)सदैव भ्रमण करता हुंआ(दु:ख सहै)दु:ख ही सहन कर रहा है।

भावार्थ - छै: द्रव्यों केसमूह को लोक कहते है। लोकालोक की चर्चा सर्वत्र सुनी जाती है। यह लोक किसने बनाय, कहॉ पर है, किन-किन का इस लोक में निवास है, इन बातों को समझ लेना आवश्यक है ! कुछ लोगों की मान्यता है कि लोक अर्थात संसार का निर्माता ईश्वर है, परन्तु यह भ्रान्ति हमें अपने मन से निकाल देना चाहिये। क्यों कि जीवादि षट द्रव्यों का समूह लोकहै। यह पूरा ।ित्र वातवलय अर्थात

वायु केआधार है। अन्य कोई इसे धारण नहीं कीये है। इसका निर्माता भी कोई नहीं है। यह षट द्रव्य मय स्वयं सिध्द है। लोक का बिनाश करने वाला भी कोई नहीं है। सभी द्रव्य उत्पाद व्यय केसाथ धौव्यता एवं अपने अस्तित्व से अवस्थित है। ऐसे लो में अनादि काल से यह जीव स्वयं को भूलकर जन्म-मरण केदुख सहता आ रहा है। सच्चे सुख व शान्ती का उपाय लोक की व्यवस्था को समझ कर समता भाव धारण करना है। इसी चिन्तन का नाम लोक भावना है।

प्रश्न १. लोक भावना किसे कहते है ?
उत्तर - षट् द्रव्य आदि केविषय में चिन्तन करने को लोक भावना कहते है।

प्रश्न २. लोक किसे कहते है ?
उत्तर - छः द्रव्यों केसमूह कौ लोक कहते है।

प्रश्न ३. लोक कितने है ?
उत्तर - सामान्यतया लोक एक ही है, किन्तु भेद से लोक तीन है। (१) ऊर्ध्व लोक(२) मध्य लोक(३)पाताल लोक।

प्रश्न ४. क्या तीनों लाकों में छहों द्रव्य है ?
उत्तर - हॉ, विश्व में सर्वत्र छहों द्रव्य व्याप्त है। जहॉ छहो द्रव्य नहीं है, उसी लोक नहीं कह सकते।

प्रश्न ५. क्या लोक केअलावा भी कुछ है ?
उत्तर - लोक केअतिरिक्त अलोक है, जहॉ मात्र आकाश द्रव्य का अस्तित्व है।

प्रश्न ६. इस लोक में जीव को सुख शान्ति कैसे संभव है ?
उत्तर - लोक की व्यवस्था को देखकर राग-द्वेष न करते हुये समता भाव धारण करने से ही लोक में आत्म शान्ति सम्भव है।

प्रश्न ७. लोक में जीव दुःख क्यों पा रहा है ?
उत्तर - मोह माया केचक्कर में पडकर यह जीव लोक में दुःख पा रहा है।

प्रश्न ८. लोक को किसने बनाया है ?
उत्तर - लोक स्वयंसिध्द है। इसका निर्माता कोई ईश्वर नहीं है लोक को धारण करने वाला भी कोई नहीं है यह अपने स्वयं केआधार पर है।

बोधि दुर्लभ भावना

अन्तिम ग्रीवक लों की हद, पायो अनन्त विरियॉ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ, दुर्लभ निज में मुनि साधौ ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ - (अन्तिम ग्रीवक लों की हद) नौवे ग्रैवेयक पर्यन्त(अनन्त विरी यॉ पद पायो) अनन्त बार अहमिन्द्र पद को प्राप्त किया (पर सम्यग्ज्ञान न लाधौ) परन्तु सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति नहीं की (दुर्लभ निज में मुनि साधौ)इस कठिन सम्यग्ज्ञान को मुनिराजों ने अपने आप में प्राप्त किया है।

भावार्थ - इस जीव ने सामान्यतया मुनिव्रत अंगीकार कर तपस्या के बल से देव,देवेन्द्र, अहमिन्द्र आदि अनेक पद अनन्त बार प्राप्त किये है। यहां तक कि अन्तिम ग्रैवेयक की ऊँचाई तक को छू चुका है परन्तु सम्यग्ज्ञान अर्थात भेद विज्ञान केअभाव में शुध्दात्म पद से बंचित रहा है। इसका कारण मुनिव्रतों को अंगीकार किया, परन्तु व्रतों का फल संसार, शरीर, भोगों से विरक्ति और स्वभाव में अनुरक्ति उसे नहीं पा सका इसलिये ग्रैवेयक तक केसुखों को भोगने केउपरान्त भी हीन पर्यायों में आकर

अनेक प्रकार के कुसंयोगो में दू:खी होता है। सम्यग्ज्ञान की आराधना और साधना करने वाले शुध्दोपयोगी निर्ग्रन्थ दिगम्बर मुनिराज सहज में ज्ञान की निर्मल पर्याय केवलज्ञान को प्राप्त कर लेते है। इस रुप का चिन्तन करना ही बोधी दुर्लभ भावना है।

प्रश्न १. बोधि दुर्लभ भावना किसे कहते है ?
उत्तर - (सम्यग्ज्ञान) आत्मज्ञान प्राप्ति की समस्याओं के विषय में चिन्तवन करना बोधि दुर्लभ भावना है।

प्रश्न २. बोधि दुर्लभ भावना के चिन्तवन से क्या लाभ है ?
उत्तर - बोधि दुर्लभ भावना के पुन पुन: चिन्तवन से अज्ञानांधकार समाप्त होता है तथा मोक्ष मार्ग के अंकुर निकलना प्रारम्भ हो जाते है।

प्रश्न ३. क्या सम्यग्ज्ञान के अभाव में सुख संभव नहीं है ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान के अभाव में मुनिव्रतों के माध्यम से नौवें ग्रैवेयक तक जीव जाता है, परन्तु आत्मज्ञान के अभाव में यथार्थ शान्ति नहीं पा सकता।

प्रश्न ४. ग्रीवक किसे कहते है ?
उत्तर - सोलह स्वर्गो के ऊपर के स्थान को ग्रीवक कहते है। ग्रीवकों की संख्या ९ है। वहां पर भी विशेष पुण्यशाली जीव जन्म लेते है।

प्रश्न ५. क्या यह जीव अनन्त बार ग्रीवकों में जा चुका है ?
उत्तर - नहीं। यहां मात्र सम्यग्ज्ञान का महत्व बताते हुये कहा है कि ग्रीवक भी यह जीव अनन्तबार चला जावे, परन्तु सम्यक्ज्ञान के अभाव में सुख शान्ति सम्भव नहीं है।

जो भाव मोहतें न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारे तब ही सुख अचल निहारे ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ - (दृग ज्ञान व्रतादिक सारे) सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र आदि (मोहतें न्यारे) मोह से रहित(जो भाव) जो भाव है (सो धर्म जबै जिय धारे)इस रत्नत्रय रुपी धर्म को यह जीव जब धारण करता है(तब ही सुख अचल निहारे)उसी समय शाश्वत सुख की अनुभूति करता है।

भावार्थ - माया, मिथ्यात्व, कषाय, छल-कपट, राग-द्वेष आदि सं अत्यन्त भिन्न जो सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र तप आदि भाव है, यह सभी मोह से परे आत्म स्वभाव के आश्रित निजी विशुध्द गुणों की आंशीक पर्यायें है। इसी रत्नत्रय भाना को आचार्यो ने धर्म कहा है। इस धर्म को धारण, आचरण अर्थात जीवन में उतारने से यह जीव निश्चल अक्षय अनन्त आनन्द की प्राप्ति कर लेता है।

प्रश्न १. धर्म किसे कहते है ?
उत्तर - जिसके माध्यम से सच्चे सुख की प्राप्ति हो ऐसा सम्यक रत्नत्रय धर्म कहलता है।

प्रश्न २. धर्म भावना किसे कहते है ?
उत्तर - रत्नत्रय को जीवन में उतारने की भावना धर्म भावना है।

प्रश्न ३. रत्नत्रय को धारण करने से क्या लाभ है ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र की एकता मोक्षमार्ग है और इस मार्ग पर चलकर भव्य आत्मा अपने सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य की प्राप्ति करता हे ।

प्रश्न ४. क्या मोह आदि लक्ष्य की प्राप्ति में बाधक है ?
उत्तर - मिथ्यादर्शन ज्ञान चारित्र एवं मोह आदि के रहते हुए धर्म भावना का जीवन में अंकुर ही नहीं उत्पन्न हो पाता है । अत: मोह मिथ्यात्व आदि आत्मोत्थान में सर्वथा बाधक है ।

.१८०.

प्रश्न ५. अचल सुख की प्राप्ति का क्या उपाय है ?
उत्तर - राग-द्वेष मोह से सर्वथा परे भेद विज्ञान रुप वीतराग अनुभव प्रत्यक्ष धर्म ही अचल सुख प्राप्ति का उपाय है ।

निश्चय धर्म धारण करने का अधिकारी कौन है

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूत उचरिये ।
ताको सुनये भवि प्राणी, अपनी अनुभूति पिछानी ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ - (सो धर्म मुनिन कर धरिये)सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्रात्मक धर्म पूर्णता वीतरागी मुनिराजों द्वारा धारण किया जाता है ।(तिनकी करततूत उचरिये) उन आध्यात्म वेत्ता ज्ञान ध्यान तपस्या में लीन मुनिराजों के कर्तव्य को कहा जा रहा है । (भवि प्राणी) हे भव्य आत्माओ ! (ताको सुनिये)उन मुनिराजों की दिनचर्या अर्थात संयमाचरण और स्वरुपाचरण की बात सुनकर समझकर (अपनी अनुभूति पिछानी)अपने निज शुध्दात्म स्वरुप की पहिचान करो ।

भावार्थ - सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्रात्मक स्वरुप हितैषी धर्म को हर आत्मा धारण करने में सक्षम नहीं है । श्रावक दशा अर्थात राग-द्वेष , अडम्बर परिग्रह वस्त्रादिक के साथ में रत्नत्रय की पूर्णता संभव नहीं है । वस्त्रों में अगर कोई पूर्ण वीतरागी बनने का दावा करता है तो वह अपने आप को धोखा दे रहा है । यह रत्नत्रय धर्म उत्तम पात्र अर्थात दिगम्बर मुनि अवस्था में ही संभव है । उन मुनिराजों के गुणों एवं कर्तव्यों की विवेचना की जा रही है । हे भव्य आत्माओं ! उसे उपयोग की एकाग्रता से सुनकर रत्नत्रय धर्म को धारण कर शुध्दात्मानुभूति के लिये प्रयत्नशील रहो ।

.१८१.

प्रश्न १. रत्नत्रय किसे कहते है ?
उत्तर - सम्यग्दर्शन , ज्ञान चारित्र की एकता को रत्नत्रय कहते है ।

प्रश्न २. रत्नत्रय धर्म को धारी कौन होते है ?
उत्तर - रत्नत्रय धर्म को पूर्ण रुप से दिगम्बर मुनिराज ही धारण कर पाते है, एक देश देशव्रती श्रावक नहीं ।

प्रश्न ३. क्या श्रावक रत्नत्रय के धारी नहीं होते ?
उत्तर - श्रावक पूर्ण रुप से रत्नत्रय को धारण नहीं कर पाते, एक देश सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र को धारण कर पाते है ।

प्रश्न ४. मुनिराजों की दिनचर्या कैसी होती है ?
उत्तर - मुनिराजों की दिनचर्या संसार, शरीर, भोगों से विरक्त स्वोन्मुख होती है।

प्रश्न ५. रत्नत्रय धर्म धारी मुनिराज से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?
उत्तर - उनके गुणव्रत तथा परिचर्या को देख कर हमे संसार, शरीर, भोगों से विरक्त होकर सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण कर मोक्ष प्राप्ति का पुरुषार्थ करना चाहिए।

.१८२.

पांचवी ढाल का सारांश

भावना की आधार शिला पर मोक्ष महल अवस्थित है, तो भावना की कोर में ही नरकों की खाई परिलक्षित होती है। उत्थान पतन हर मानव की भावना के अनुसार ही होता है। भावना का उत्कर्ष ही मानव का उत्कर्ष है एवं भावना का पतन मानव का पतन है।

सद्भावना भाने वाले मानव का विश्व में कोई शत्रु नही रहता तथा दुर्भावना रखने वालों से कोई मैत्री रखने को तैयार नहीं है। अत: भावना का महत्व वचनातीत है।

आर्त रौद्र रुप दुर्भावना सम्यक्आचरण करने वाले महानुभावों के मन में जन्म ही नहीं लेती उनके मन में प्रतिक्षण संसार शरीर भोगों से तिराने वाली भावना उमडती रहती है। इन्हीं भावनाओं की चर्चा इस पांचवी ढाल में की गई है।

अनित्य भावना में कुछ भी नित्य नहीं है। धन परिजन आदि सभी पदार्थ परिणमन शील है। यह बताते हुये अशरण भावना में यह कहा है कि विश्व में कोई भी किसी को सच्चा शरण नहीं है। संसार भावना में संसार की असारता एवं चतुर्गति के अवर्णनीय दु:खो का द्वार बताते हुये एकत्व भावना में शरीर से भी जीव को भिन्न बताते हुये कहा है कि यह जीव जन्म-मरण अकेला ही करता है एवं सुख दु:ख को भी स्वयं भोगता है। अन्यत्व भावना में यह बताया है कि किसी का भी किसी से सच्चा नाता नहीं है। जिस नारी की प्रीती में नर अपना अस्तित्व खो बैठता है, जिस शरीर के श्रृंगार में जीवन के लक्ष्य को ध्वस्त कर देता है, यह सभी आत्म स्वरुप से भिन्न है।

.१८३.

विश्व में कोई भी पदार्थ हमारा नहीं है सिवाय ज्ञानादि आत्म गुणों के। अशुचि भावना में इस दुर्गन्धित घृणित, अपवित्र मल-मुत्र के जनक शरीर की दुर्दशा को बताकर इस शरीर से विरक्ति का उपदेश दिया है।

आश्रव भावना के अन्दर यह बताते हुये कि शुभाशुभ दोनों प्रकार के आश्रव मिथ्यात्व कषाय एवं योगों के माध्यम से आते है, अनन्त दु:खों के यह जनक है। विवेकी जन इस आश्रव से अपने आपको परे रखने का प्रयत्न करते है। संबर भावना म ें कहा है कि जो भव्य आत्मा पुण्य पाप को छोडकर आत्मानुभूति में निरत रहते है, वे सभी कर्मो का निरोध कर देते है। निर्जरा भावना में निर्जरा की विवेचना दो प्रकारउसे की है, सविपाक और अविपाक। पहली सविपाक निर्जरा प्रत्यक जीवके होती है, मोक्षमार्ग में जिसकी कोई उपयोगिता नहीं है। द्वितीय अविपाक निर्जरा में तपस्या के बल से कर्मो की निर्जीण कर दिया जाता है फलत: शाश्वत आनन्दकी उपलब्धि प्रतिपादित की है। लोक भावना की विवेचना करते हुये बाताया है कि लोक अनादि निधन है इसका निर्माता और ध्वंसक कोई नहीं है। ऐसे लोक के अन्दर राग-द्वेष

विकल्पों से मानव व्यथित रहता है, समता सुख को नहीं पाता। बोधि दुर्लभ भावना की विवेचना करते हुये बताया है की इस जीव ने ग्रीवक तक की ऊँचाइयों को छू लिया है, परन्तु सम्यग्ज्ञान की उपलब्धि नहीं की है। सम्यग्ज्ञान से विभूषित भव्य आत्मा परमात्मा पद को प्राप्त हो चुके। अन्तिम धर्म भावना के अन्दर बताया है कि राग-द्वेष, मोह, ममता विषय कषाय आदि विभाव परिणिती को छोडकर जो भव्य आत्मा

दिगम्बर मुनिपद से विभूषित हो जाते है, वे रत्नत्रय धर्म रुपी नौका में बैठकर संसार समुद्र से पार हो जाते है।

इस प्रकार छहढाल की पंचम ढाल में इन द्वादश अनुप्रेक्षाओं की विवेचना की है जिनका पुन: पुन: चिन्तवन करने से स्वाभाविक वैराग्य भावनायें बलवती रहती है।

वैराग्य मूल वर भावना, भावें भव्य पुनीत।
रत्नत्रय निधि प्रगट हो, भव बन्धन ले जीत ॥

ओम शान्ति

छटमी ढाल

मुल मुनिन के मूलगूण, और आचरण रुप।
यथा जात वरणन करुं, ज्ञानानन्द स्वरुप ॥

सकल व्रती मुनिराज के २८ मूल गूणों में आदि के चार महाव्रतों का स्वरुप

षट काय जीव न हनन तै, सव विधि दरव हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारतैं, हिंसा न भाक्ति अवतरी ॥
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हूँ बिना दीयो गहै।
अठदश सहस विध शील धर,चिद बम्हमें नित रमि रहै ॥ १ ॥

अन्वयार्थ - (षट काय जीव न हननतैं)छह कायों के जीवों को नहीं सताने से (सब विध दरव हिंसा टरी) सभी प्रकार की द्रव्य हिंसा समाप्त हो गयी हैं(रागादि भाव निवारतै) रागादि भावों का निवारण हो जाने के कारण(हिंसा न भावित अवतरी) भाव हिंसा का भी सद्भाव नहीं रहता(जिनके न लेश मृषा)और जिनके किञ्चत मात्र भभ्असत्य नहीं है(न जल मृण हूँ बिना दीयो गहै) जल और मिटटी भी बिना दिये ग्रहण नहिं करते (अठदश सहस विध शील धर) अठारह हजार प्रकारके शीलव्रत को धारण कर (चिद् ब्रम्ह में नित रमि रहै) चैतन्य स्वरुप आत्मा में निरन्तर लीन रहेते है।

भावार्थ - त्रस नाली के अन्दर अनन्तानन्त जीव एक इन्द्रिय से पंच इन्द्रिय तक अवस्थित है। करुणा एवं अहिंसा के धारी मुनिराज पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक,

वाययुकायिक, वनस्पतिकायिक, त्रस कायिक जीवों को मन, वचन, काय से कृति कारिता अनुमोदन से किञ्चीत मात्र भी कष्ट नहीं पहुचाते अर्थात द्रव्य

हिंसा के परिपूर्ण त्यागी होते है और राग-द्वेष आदि स्वपर घातक विकारों के भी यत्नाचार पूर्वक परित्यागी होने के कारण भाव हिंसा के भी सर्वथा त्यागी होते है। दोनों प्रकार की हिंसा से परिपूर्ण मुक्त होने से दिगम्बर मुनिराज अहिंसा महाव्रत के धारी होते है।

सभी प्रकार की संसार स्वार्थ सिध्दि छल-कपट का अभाव हो जाने से किञ्चत मात्र भी मिथ्या भाषण नही˙ करते इसलिये सत्य महाव्रत के धारी होते है। निज पर का भली प्रकार परिज्ञान हो जाने क कारण दूसरे के बिना दिये जल और मिटटी तथा तृण आदि भी ग्रहण न करने के कारण अचौर्य महाव्रत के धारी होते है। स्त्री पुरुष नपुंसक पर्याय जन्य भावों का राग नहीं होने के कारण अठारह हजार प्रकार के शील को धारण करके शुध्द ब्रम्ह स्वरुप में सदैव परिचर्या करने से ब्रम्हचर्य महाव्रत के धारी होते है।

प्रश्न १. महाव्रत किसे कहते है ?

उत्तर - अहिंसादि समस्त व्रतों की पूर्णता को महाव्रत कहते है, और वे महाव्रत अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रम्हचार्य तथा अपरिग्रह के भेद से मूल में ५ प्रकार के है।

प्रश्न २. अहिंसा महाव्रत किसे कहते है ?

उत्तर - एकन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त किसी भी जीव को त्रियोग से कष्ट नहीं पहुंचाना ही अहिंसा महाव्रत है।

प्रश्न ३. जीव कितने प्रकार के होते है ?

उत्तर - कार्यो की अपेक्षा से जीव छः प्रकार से है। पृथ्वीकायिक जल कायिक, अग्नि कायिक वायुकायिक, वनस्पति कायिक एवं त्रस कायिक।

प्रश्न ४. छः प्रकार के जीवों का स्वरुप किस प्रकार है ?

उत्तर - पृथ्वी - पृथ्वी ही जिनका शरीर है उसे पृथ्वी कायिक जीव कहते है।

जल - जल ही जिनका शरीर है उसे जल कायिक जीव कहते है।

अग्नि- अग्नि ही जिनका शरीर है उसे अग्नि कायिक जीव कहते है।

वायु - वायु ही जिनका शरीर है उसे वायु कायिक जीव कहते है।

वनस्पती - वनस्पति ही जिनका शरीर है उसे वनस्पति कायिक जीव कहते है।

त्रस - त्रस नाम कर्म के उदय से दो इन्द्रिय से पंचेन्द्रिय पर्यन्त अनेक पर्यायों में उत्पन्न जीवों को त्रस काय जीव कहते है।

प्रश्न ५. द्रव्य हिंसा किसे कहते है ?

उत्तर - किसी भी जीव के प्राण घात करना या नष्ट करने के लिये बार कर देना ही द्रव्य हिसा है।

प्रश्न ६. भाव हिंसा किसे कहते है ?

उत्तर - किसी भी जीव के घात करने की योजना बनाना, मन में चिन्तवन करना इसे ही भाव हिंसा कहते है।

प्रश्न ७. लोक में सर्वत्र जीव व्याप्त है तो मुनिराज अहिंसा महाव्रत केधारी कैसे हो सकते है ?

उत्तर - मुनिराज पूर्ण प्रमाद केविजेता एवं तीनों योगों की एकाग्रता पूर्वक राग-द्वेष केत्यागी होने केकारण अहिंसा महाव्रत केधारी होते है।

.१८८.

प्रश्न ८. द्रव्य हिंसा केत्यागी मुनिराज कैसे कहलाते है ?

उत्तर - छः प्रकार की हिंसा केसर्वथा त्यागी होने से द्रव्य हिंसा केत्यागी है।

प्रश्न ९. भाव हिंसा केत्यागी मुनिराज कैसे होते है ?

उत्तर - राग-द्वेष आदि को भाव हिंसा कहते है। मुनिराज राग द्वेष केपूर्ण त्यागी होते है इसलिये मुनिराज भाव हिंसा केभी त्यागी होते है।

प्रश्न १०. सत्य महाव्रत किसे कहते है ?

उत्तर - प्रमाद, कषाय तथा राग-द्वेष से रहित आगमानुसार हितमित मित और प्रिय वचन बोलने को सत्य महाव्रत कहते है , या वस्तु स्वरुप की यथार्थ व्याख्या को सत्य महाब्रत कहते है।

प्रश्न ११. मुनिराज सत्य महाव्रत केधारी क्यों होते है ?

उत्तर - सभी प्रकार केलौकिक स्वार्थ एवं छल कपट का अभाव हो जाने केकारण मुनिराज सत्य महाव्रत केधारी होते है।

प्रश्न १२. अचौर्य महाव्रत किसे कहते है ?

उत्तर - तिल-तुष मात्र भी पर वस्तु को ग्रहण नहीं करना अर्थात बिना दिये मिटटी और पानी भी ग्रहण नहीं करने को अचौर्य महाव्रत कहते है।

प्रश्न १३. मुनिराज अचौर्य महाव्रत केधारी क्यों होते है ?

.१८९.

उत्तर - संसार केकिसी भी पदार्थ केप्रति उनका राग एवं अपनत्व भाव नहीं रह गया है, इसलिये पर पदार्थ में आकर्षण नहीं होने से चोरी का भाव नहीं होता। अतः मुनिराज अचौर्य महाव्रत केधारी होते है।

प्रश्न १४. बम्हचर्य महाव्रत किसे कहते है ?

उत्तर - नवकोटि से स्त्री संसर्ग का त्याग एवं आत्म स्वरुप में लीन रहने को बम्हचर्य महाव्रत कहते है। कहा भी है - ब्रम्हाणि आत्मनि चरति इति ब्रम्हचर्य :

प्रश्न १५. मुनिराज ब्रम्हचर्य केधारी क्यों होते है ?

उत्तर - स्त्री पर्याय केप्रति किञ्चित भी राग नहीं होने केकारण जो शील को १८ हजार प्रकार से रक्षण कर शुध्द आत्म स्वरुप में रमण करते है, वे मुनिराज पूर्ण ब्रम्हचर्य महाव्रत के धारी कहलाते है।

प्रश्न १६. छटवी ढाल में किस विषय का विवेचन है ?

उत्तर - छटवी ढाल में पूर्ण रत्नत्रय के धारी दिगम्बर मुनिराज की बाहय औश्र अभ्यान्तर क्रिया, उनके फल स्वरुपाचरण चारित्र तथा मोक्ष सुख की विवेचना है।

परिग्रह त्याग महाव्रत एवं ईर्याभाषा समिति

अन्तर चतुर्दश भेद बाहर, संग दसधा तै टले।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिती ईर्या तै चलें ॥
जग सुहित कर सब अहित हर श्रुति,सुखद सब संशय हरें।
भ्रम रोग हर जिनके वचन मुख, चंन्द्र तैं अमृत झरें ॥ २ ॥

अन्वयार्थ - (अन्तर चतुर्दश भेद) (दिगम्बर मुनिराज)अन्तरंग में चौदह प्रकार(बाहर दसधा संग तै

.१९०.

टलें) एवं बाहय में दस प्रकार के परिग्रह से परे रहते है (परमाद तजि)प्रमाद को छोडकर(चौकर महि लखि) चार हाथ जमीन देखकर(ईर्या समिति तैं चलें) ईर्या समिति का पालन करते हुए चलते है (जग सुहित कर) संसार के प्राणियों का हित करने वाले (सब अहित हर) सभी प्रकार के विकारों को दूर करने वाले (श्रृति सुखद) कर्ण इन्द्रिय को अच्छे लगने वाले (सब संशय हरें) सभी प्रकार` संशयो का निराकरण करने वाले (भ्रम रोग हर) भ्रम रुपी रोग को नष्ट करने वाले(जिनके मुख चन्द्रतै) मुनिराज के मुख रुपी चन्द्रमा से (वचन अमृत झरें)वचन रुपी अमृत झरता है।

भावार्थ - सभी पापों मे प्रधान पाप परिग्रह संचय है। परन्तु आज के युग में परिग्रह धारी को पापी कहने वाले कम और धर्मात्मा कहने वाले ज्यादा नजर आ रहे है, यह नीति गृहस्थो वी है। मुनिराज यथार्थ मार्ग के अनुयायी एवं निज स्वरुप को ही निज मानने वाले क्रोध, मन, माया, लोभ, हास्य, रति, अरति, शोक , भय , जूगुप्सा, स्त्रीवेद, नपुंसकबेद, मिथ्यात्व इस प्रकार अन्तरंग चौदह प्रकार क परिग्रह से परे रहते है एवं पीछी कमंडलु और शास्त्र के अतिरिक्त तिल तुष मात्र भी अन्य पदार्थो से राग न होने के कारण ।ात्र, वस्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्प , भोड इस प्रकार बहिरंग दस प्रकार के परिग्रह के त्यागी है। इन अभ्यन्तर एवं बाहया दोनों प्रकार के परिग्रहों के प्रति मुनिराज के ह्रदय में लगाव या मूर्छा नहीं है। जिसके ह्रदय में परिग्रह के प्रति मूर्छा समाप्त हो जाती है वह बाहय में आगम्बर, परिग्रह कषाय, विकार आदि से अत्यन्त परे, बाहय से दिगम्बर होकर मोक्षमार्ग का सच्चा अनुयायी बन जाता है।

.१९१.

सभी प्रकार के प्रमाद को जीतकर विहार करते समय वे मुनिराज चार हाथ जमीन देखकर ईर्या समिति से गमन करते है और भाषा समिति का परिपूर्ण पालन करते हुये सारे विश्व को दु:ख हरण कल्याणकारी संशय भ्रम आदि रोग को मिटाने वाले प्रिय वचन रुपी अमृत के झरने उनके मुख से समय समय पर झरते है अर्थात मुनिराज अधिक समय त्रियोग से मौन रहते है अगर बोलते भी है तो उनके मुख से भव्य जीवों के लिये कल्याणी वाणी ही मुखरित होती है।

प्रश्न १. अपरिग्रह महाव्रत किसे कहते है?

उत्तर - अन्तरंग एवं बाहय पदार्थो के प्रति लोभ एवं मूर्छा का पूर्णतया अभाव होना अर्थात पीछी कमंडलू एवं शास्त्र के अतिरिक्त तिल-तुष मात्र भी वस्तु के न होने को अपरिग्रह महाव्रत कहते है।

प्रश्न २. मुनिराज को अपरिग्रह धारी क्यों कहते है ?
उत्तर - अभ्यन्तर, बहिरंग पूर्ण परिग्रह के त्यागी होने के कारण मुनिराज को अपरिग्रह महाव्रती कहा जाता है।

प्रश्न ३. परिग्रह किसे कहते है ?
उत्तर - आसक्ति भाव से पर वस्तुओं के संचय करने को परिग्रह कहते है। वस्तुत: आसक्ति, मुर्छाभाव ही परिग्रह है।

प्रश्न ४. परिग्रह के कितने भेद है ?
उत्तर - परिग्रह के दो भेद है। (१)अन्तरंग परिग्रह (२) बाहय परिग्रह।

प्रश्न ५. अन्तरंग परिग्रह किसे कहते है ?
उत्तर - जो प्राणी को अपने स्वरुप में न रहने दे वह आकुलता अर्थात रागद्वेष मिथ्यात्व आदि आभ्यन्तर परिग्रह

है। इसके चौदह भेद निम्न प्रकार है - मिथ्यात्व,क्रोध, मान, माया, लोभ, हास्य, रति , अरति, शोक, भय, जुगुत्सा स्त्री वेद, पुरुषवे्द, नपुंसक वेद।

प्रश्न ६. बाहय परिग्रह किसे कहते है ?
उत्तर - पर पदार्थो में अपनत्व की भावना एवं धन धान्यादि को बाहय परिग्रह कहते है। इसके दस भेद निम्न प्रकार है - क्षेत्र, वस्तु, हिरण्य, सुवर्ण, धन, धान्य, दासी, दास, कुप्य,भांड।

प्रश्न ७. पीछी, कमंडलु, शास्त्र परिग्रह नहीं है क्या ?
उत्तर - पीछी कमंडलु, शास्त्र परिग्रह तो है परन्तु शुचिता, ज्ञान और संयम के सहायक होने के कारण उनको परिग्रह में शामिल नहीं किया है।

प्रश्न ८. पीछी कमंडलु शास्त्र धारी मुनिराजों को अपरिग्रह महाव्रत धारी क्यों कहा जाता है ?
उत्तर - राग द्वेष कों बढाने वाली वस्तुओं को परिग्रह कहा है। पीछी , कमंडलू और शास्त्र, राग द्वेष मोह को हटाकर मोक्ष मार्ग पर भव्यात्माओं को अ्ग्रसर करनेउवाले है। अत: पीछी कमंडलु शास्त्र रहते हुये भी मुनिराज अपरिग्रह महाव्रत के धारी है।

प्रश्न ९. समिति किसे कहते है, तथा कितनी है ?
उत्तर - समीचीनता पुर्वक आगमानुसार आहार, विहार आदि सभी कार्य विवेक पूर्वक देख भाल करके करना ही समिति है। समिति के पांच भेद है। ईर्या, भाषा, एषणा, आदान निक्षैपण एवं व्यत्सर्ग।

प्रश्न १०. ईर्या समिति किसे कहते है ?
उत्तर - प्रमाद को छोडकर जीव रक्षा केभाव से चार हाथ जमीन को देखकर विहार करने को ईर्या समिति कहते है।

प्रश्न ११. भाषा समिति किसे कहते है ?
उत्तर - आगम केअनुसार हित मित-प्रिय वचन बोलने को भाषा समिति कहते है।

एषणा, आदान निक्षेपण एवं प्रतिष्ठापना समिति

छयालीस दोस बिना सुकुल, श्रावक तनै घर अशन को।
लैं, तप बढावन हेतु, नहिं तन, पोषते तजि रसन को ॥
शुचि ज्ञान संयम उपकरण, लखि कैं गहे लखि कैं धरें।
निर्जन्तु थान विलोक तन, मल मूत्र श्लेषम परिहरें ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ् - (छयालीस दोस बिना) छयालीस दोषों से रहित (सुकुल) सदाचार पालन करने वाले दउच्च कुल के(श्रावक तनैं घर) श्रावकों के घर(असन को)आहार को (तप बढावन हेतु लैं)तप बढाने केलिए ग्रहण करते है (तन नहिं पोषते) शरीर का पोषण नहीं करते (रसन को तजि) कुछ रसों का परित्याग करके(मुनि) आहार लेते हैं(शुचि ज्ञान संयम उपकरण) शास्त्र कमंडल और पीछी(लखि कैं गहें लखि कैं धरें) भूमि अवलोकन करके रखते, उठाते है (निर्जन्तु थान विलोक) जीव जन्तु रहित स्थान देखकर(तन मल मूत्र श्लेषम परिहरें) शरीर का मल, मूत्र, कफ आदि का बिसर्जन करते है।

भावार्थ - लोक में दो प्रकार केप्राणी देखे जाते है। एक तो खाने केलिए जीते है, एक जीने केलिए खाते है। जो खाने केलिये जीते हैं वह अभक्ष आदि भोजन का कोई विवेक नहीं रखते, जैसा मिलता खाने को आतुर रहते है। परन्तु जो जीने केलिये भोजन करते है उनमें श्रेष्ठ है परमारध्य दिगम्बर मुनिराज जो १६ उद,गम दोष १६ उत्पादन दोष, १० एषणा दोष, धूम अंगार आदि ४ महादोष इसप्रकार छयाली स दोषों से रहित उत्तम कुल, जिस कुल में विधवा विवाह आदि या अनैतिक व्यापार आदि न होते हो, ऐसे श्रावकों केयहां नवध ॥ भक्ति पूर्वक सादा और शुध्द आहार को ज्ञान, ध्यान, तपस्या की वृध्दि हेतु ग्रहण करते है, शरीर पोषण केलिये नहीं। इष्ट भोजन में भी कभी नमक, कभी दुध, कभी मीठा, कभी सभी प्रकार केरस परित्याग करकेऊनोदर आहार ग्रहण करते है।

लौकीक पवित्रता का उपकरण कमंडल, ज्ञान वृध्दि का उपकरण शास्त्र एवं संयम की वृध्दि अर्थात करुणा और दया का उपकारण पीछी इन तीनों को विवेक पूर्वक चौकी या जमीन पर रखते है और किसी जीव काघात न हो जाय इसलिये देख भाल कर ही ग्रहण करते है। शरीर का मल-मूत्र एवं श्लेष्म आदि सभी को जीव जन्तु रहित स्थान देखकर विसर्जन करते है।

प्रश्न १. एषणा समिति किसे कहते है ?
उत्तर - विवेक पूर्वक निर्दोष आहार करने को एषणा समिति कहते है।

प्रश्न २. दोष किसे कहते है ?

उत्तर - नैतिकता का उल्लंघन या आहार में उपस्थित होने वाली विकृतियों को दोष कहते है ।

प्रश्न ३. आहार में उपस्थित होने वाले दोष कितने होते है ?

.१९५.

उत्तर - आहार में १६ उद्गम. १६ उत्पादन, १० एषणा एवं चार धूमादि दोष इस प्रकार छयालीस दोष होते है ।

प्रश्न ४. सोलह उद्गम दोषों केनाम ?

उत्तर - (१) औद्येशिक (२) अध्ययि (३) पूति (४) मिश्र (५) स्थपित (६) बलि (७) प्रावर्तित (८) प्राविष्करण (९) क्रीत (१०) प्रामृष्य (११) परिवर्त (१२) अभिघठ (१३) उदभिन्न (१४) मालारोहण (१५) माधेय (१६) अनीशार्थ् ।

प्रश्न ५. सोलह उत्पादन दोषों केनाम ?

उत्तर - (१) धात्री(२) दूत(३) निमित्त (४) आजीव (५) वनीपक (६) चिकित्सा (७) क्रोध (८) मान (९) माया (१०) लोभ (११) पूर्व संस्तुति (१२) पश्चात सुस्तुति (१३) विद्या (१४) मंत्र (१५) चूर्ण (१६) मूल कर्म दोष ।

प्रश्न ६. दस एषण दोषों केनाम ?

उत्तर - (१) शंकित दोष (२) भक्षित दोष (३) निक्षिप्त दोष (४) पिहित दोष (५) संव्यवहरण दोष (६) दायक दोष (७) उन्मिश्र दोष (८) अपरिणत दोष (९) लिप्त दोष (१०) छोटित दोष ।

प्रश्न ७. चार धूमादि दोषों केनाम ?

उत्तर - १. सांयोजना २. अप्रमाण ३. अंगार ४. धूम दोष ।

प्रश्न ८. मुनिराज आहार केलिये किनकेघर जाते है ?

उत्तर - मुनिराज आहार केलिये उच्च कूलीन श्रावकों केघर जाते है ।

.१९६.

प्रश्न ९. उच्च कुलीन श्रावक किसे कहते है?

उत्तर - श्रध्दा विवेक एवं क्रियाशील श्रावक को उच्च कुलीन श्रावक कहते है, अर्थात जिनके धर सप्त व्यसन सेवन नहीं किये जाते हो, आगम विरुध्द कार्य नहीं होते हो, नैतिक सदाचार अणव्रत आदि का पालन होता हो, उन्हें उच्च कुलीन श्रावक कहते है ।

प्रश्न १०. मुनिराज आहार क्यों लेते है ?

उत्तर - ज्ञान ध्यान और तपस्या की वृध्दि हेतु मुनिराज आहार ग्रहण करते है, इन्द्रिय लोलुपता और शरीर पोयण केलिये नहीं ।

प्रश्न ११. मुनिराज मॉग कर आहार कर सकेते है क्या?

उत्तर - मुनिराज की अयाचक वूत्ति होती है, वह आहार केविषय में स्वप्न में भी चर्चा नहीं करते । श्रावक जो भी आहार देता है, उसी को सन्तोष पूर्वक ग्रहण करते है । अगर कोई साधु

याचना कर आहार करता है तो वह साधु नहीं स्वादू है, दोषी है। सच्चे मुनिराज तो आहार क समय इशारा तक नहीं करते है।

प्रश्न १२. आदान निक्षेपण समिति किसे कहते है ?
उत्तर - ज्ञान संयम और पवित्रता के उपकरण का यत्नाचार पूर्वक रखने और उठाने को आदान निर्क्षपण समिति कहते है।

प्रश्न १३. उपकरण किसे कहते है ?
उत्तर - मुनि चर्या केबाहय साधनों को उपकारण कहते हैं और शुध्दि संयम तथा ज्ञान केभेद से ये तीन प्रकार केहै।

.१९७.

प्रश्न १४. शुध्दि का उपकरण किसे कहते है?
उत्तर - शुचिता का उपकरण कंडल को कहते है। इस कमंडल में प्रासूक अठ पहरा जल रहता है जो चौबीस घन्टे पर्यन्त शौचादि केउपरान्त शुध्दि करने केकाम आता है।

प्रश्न १५. मुनिराज कमंडल का पानी पीते है क्या ?
उत्तर - मुनिराज आहार करते समय ही जल ग्रहण करते है इसकेबाद पुन: जल की एक बुद भी नहीं पीते। कमंडलु का पानी तो केवल बाहय शुध्दि केलिये ही है।

प्रश्न १६. ज्ञान का उपकरण किसे कहते है ?
उत्तर - जिनवाणी अर्थात आचार्यो द्वारा प्रणीत शास्त्रों को ज्ञान का उपकरण कहते है।

प्रश्न १७. शास्त्रों को मुनिराज खरीदते व बेचते भी है क्या ?
उत्तर - मुनिराज न शास्त्र खरीदते है, न बेचते क्यंकी उनका सम्बन्ध पैसे से हमेशा केलिये टूट चुका है। स्वेच्छा से जब कोई भेंट करता है तब ग्रहण करते है और स्वाध्याय केबाद किसी योग्य पात्र को देखकर दे देते है।

प्रश्न १८. संयम का उपकरण किसे कहते है ?
उत्तर - मयुर पुखों की पिच्छिका को संयम का उपकरण कहते है।

प्रश्न १९. मुनिराज क्या मोरों को पकडकर पंख निकालते है ?
उत्तर - मुनिराज अहिंसा महाव्रत केधारी है इसलिये मोर को पकड कर पंख ग्रहण नहीं करते है और अचौर्य महाव्रत केधारी है इसलिये जमीन पर पडे हुये पंख भी ग्रहण नहीं करते है।

.१९८.

प्रश्न २०. पैसे केअभाव में मुनिराज केपास पीछी कमण्डल शास्त्र कहॉ से आते है ?
उत्तर - अपने कर्तव्यों में कुशल श्रावक अपने घर में पीछी कमंडल और शास्त्र सदैव रखते है। जब किन्हीं मूनिराज केपास खंडित पीछी कमण्डल आदि देखते हैं ते स्वेच्छा से उनकेसमक्ष समपिात कर देते है।

प्रश्न २१. व्युत्सर्ग समिति किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर केमल मूत्र को विवेक पूर्वक निर्जन्तु स्थान पर विसर्जन करना व्युत्सर्ग समिति है।

तीन गुप्ति और पंचेन्द्रिय विजय

सम्यक्प्रकार निरोध मन वच, काय आतम ध्यावते ।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृगगण, उपल खाज खुजावते ॥
रस रुप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने ।
तिनमें न राग विरोध पंचन्द्रिय, जयन पद पावने ॥ ४ ॥

अन्वयार्थ - (सम्यक् प्रकार निरोध) (मुनिराज) भली प्रकार इन्द्रियों का निग्रह कर (मनन वचन काय आतम ध्यावते) मन वचन काय इन तीनों की एकता से आत्म स्वरुप का ध्यान करते है (तिन सुथिर मुद्रा देखि) उन मुनिराजों की (ध्यानमय) स्थिर मुद्रा को देखकर (मृगगण)जंगल में रहने वाला मृगों का समूह (उपल) पत्थर की मूर्ति समझकर (खाज खुजावतें) (अपने शरीर की) खुजलाहट शान्त करने के लिये अपने शरीर को मुनिराज के शरीर से रगडते है। (फरस रस गन्ध रुप अरु शब्द) स्पर्श, रस, गन्ध, रुप और शब्द (शुभ असुहावने) (ये पांचों इन्द्रियों के विषय)इष्ठ और अनिष्ठ दोनों प्रकार के है परन्तु (तिनमें न राग विरोध)इन पांचों इन्द्रिय जन्य विषयों में मुनिराज को न राग है, न द्वेष है इसलिये (पंच इन्द्रिय जयन पद पावने) पंच इन्द्रियों के जीतने में विजयी कहलाते है।

भावार्थ - संसारी जीव मन वचन काय की कुटिलता के कारण अनादि काल से भव सागर में गोते खाते आ रहे है और हमारे भवभीरु मोक्षमार्गी दिगम्बर मुनिराज मन वचन काय की सरजता से भली प्रकार चित्त एकाग्र करके निरंजन निर्विकार अनन्त गुणों के पुत्र्ज निज शुध्दात्मा की अनुभूती में जब तन्मय हो जाते है तब इन मुनिराजों की ध्यानउमुद्रा की कभी-कभी जंगल में विचरण करने वाले मृग आदि पशु पाषाण खण्ड समझकर शरीर की खाज खुजाते रहते है, परन्तु धन्य है उन मुनिराज को, जो किंचित मात्र भी ध्यान से विचलित नहीं होते। अपने उपयोग का बाहय में दुरुपयोग नहीं करते तथा स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु एवं कर्ण इन पांचो इन्द्रियों के मनाज्ञ, अमनोज्ञ विषयों से परिपूर्ण विरक्त होने के कारण पंच इन्द्रिय विजेता बनते है।

प्रश्न १. गुप्ति किसे कहते है ?
उत्तर - मन वचन काय तीनों की एकता को गुप्ति कहते है।

प्रश्न २. गुप्ति कितनी होती है ?
उत्तर - गुप्ति तीन होती है।
मन गुप्ति २. वचन गुप्ति ३. काय गुप्ति।

प्रश्न ३. मन गुप्ति किसे कहते है?
उत्तर - मन की चंचलता रोककर स्वरुपस्थ होने को मन कहते है।

प्रश्न ४. वचन गुप्ति किसे कहते है ?

उत्तर - वचन की एकाग्रता पूर्वक मौन होकर स्वात्मनिष्ठ होने को वचन गुप्ति कहते है।

प्रश्न ५. काय गुप्ति किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर की एकाग्रता केसाथ आत्मस्थ होने को काय गुप्ति कहते है।

प्रश्न ६. मुनिराज केशरीर से मृगगण खाज क्यों खुजाते है ?
उत्तर - ध्यान में बैठे मुनिराज को पत्थर समझकर मृग गण खाज खुजाते है।

प्रश्न ७. मुनिराज पंच इन्द्रिय विजेता क्यों कहलाते है ?
उत्तर - पंच इन्दिय केमनोज्ञ एवं अमनोज्ञ विषयों में राग-द्वेष का त्याग होने से मुनिराज पंच इन्द्रिय केविजेता कहलाते हेा

प्रश्न ८. स्पर्शन इन्द्रिय विजय किसे कहते है ?
उत्तर - आठों प्रकार केस्पर्शन इन्द्रिय जन्य विषयों में साम्य भाव रखने को स्पर्शन इन्द्रिय विजय कहते है।

प्रश्न ९. रसना इन्द्रिय विजय किसे कहते है ?
उत्तर - सभभ प्रकार केरस एवं षटरण व्यत्र्जनों में किसी भी प्रकार का राग-द्वेष नहीं होना, लालसा आदि नहिं होने को रसना इन्द्रिय विजय कहते है।

प्रश्न १०. घ्राणेन्द्रिय विजय किसे कहते है ?
उत्तर - अनुकूल प्रतिकूल गन्धों में राग-द्वेष का नहीं होना ही घ्राणेन्द्रिय विजय है।

प्रश्न ११. चक्षु इन्द्रिय विजय किसे कहते है ?

उत्तर - मनोज्ञ एवं अमनोज्ञ रुपों को देख कर उनमें प्रीति एवं घृणा नहीं करना उसे चक्षु इन्द्रिय विजय कहते है।

प्रश्न १२. कर्णेन्द्रिय विजय किसे कहते है ?
उत्तर - अनुकूल एवं प्रतिकूल वचन अर्थात अपनी निन्दा एवं प्रशंसा सुनने केबाद राग-द्वेष नहीं करने को कर्णेन्द्रिय विजय कहते है।

प्रश्न १३. इन्द्रियों यर मुनिराज जबरदस्ती विजय प्राप्त करते है क्या ?
उत्त र - संसार शरीर एवं भोंगो से विरक्त, आत्मस्वरुप में अनुरक्त मुनिराज स्वभावत: ही इन्द्रिय जन्य भोगों से विमुख एव उदासीन रहते है। अर्थात मूनिराज हठात इन्द्रियों पर विजय प्राप्त नहीं करते, स्वभावत: ही इन्द्रियां उनकेआधीन रहती है।

षट आयश्यक एवं सप्त शेष गुण

समता सम्हारे थुति उचारें, वन्दना जिन देव को।
नित करें श्रुतिरति, करें प्रतिक्रम, तजें तन अहमेंव को ॥
जिनकेन न्हौन दन्त धोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में कछु, शयन एकासन करन ॥ ५ ॥

अन्वयार्थ - (समता सम्हारें)मुनिराज समता अर्थात सदैव मूर्छा त्यागकर सामायिक में लीन रहते है और (थुति उचारें) गुणों की स्तुति करते है और (जिनदेव वन्दना) जिनदेव की बन्दना करते है (नित श्रृति रति करें) नित्य प्रवचन वात्सल्य स्वाध्याय करते है (प्रतिक्रम करें) त्रिकाल प्रतिक्रमण करते है (तन अहमेव को तजें) शरीर से ममत्व भाव छोडते है (जिनके न्होंन) जो स्नान नहीं करते (दंत धावन न) दातों को चमकाने के

लिये मन्जन नहीं करते (लेशे अंबर आवरण न) लेश मात्र भी वस्त्र का आवरण शरीर पर नहीं रखते (भू माहिं पिछली रयनि में) पृथ्वी के ऊपर ही अर्ध रात्रि के बाद पिछली रात्रि में (कछु शयन एकासन करन)थोडी (करीबन ३ घंटे)विश्राम (नींद) एकासन से करते है।

भावार्थ - एक ओर मोह ममता के चक्कर में संसारी जीव कर्तव्य विमुख होकर दु:ख और अशांती का उपभोग करते आ रहे है। दूसरी और मोक्षमार्गी कर्तव्य निष्ठ मुनिराज समता अर्थात सदैव सुख शान्ति की खोज में लीन रहते है। भक्ति का अनुराग आने पर आत्म गुणों की स्तुति और जिनेन्द्र भगवान की वन्दना करने में तन्मय हो जाते। स्वरुप को समझने के लिये स्वध्याय करते हुये दोषों की खोज एवं निराकरण के लिये प्रतिक्रमण, प्रत्याख्यान करके शरीर से निर्ममत्व रहते। शरीर पर कितनी भी धूल मिटटी आदि मल जमा हो जाय फिर भी स्नान नहीं करते दांतों को चमकाने की भावना से मंजन नहीं करते (मात्र अन्न कणों को निकालने के लिये दांतों की सफाई करते है) शरीर ढकने के लिये लेश मात्र भी वस्त्र नहीं रखते। पृथ्वी पर ही प्रात: कालीन रात्रि में अर्ध रात्रि के बाद अधिक से अधिक एक करवट से विश्राम करते है। इस प्रकार मुनिराज षट आवश्यक औश्र मूल गुणों के पालन में अहर्निश जागरुक रहते है।

प्रश्न १. आवश्यक कर्म किसे कहते है ?

उत्तर - जिस पद में नियमों का पालन इन्द्रिय निग्रह पूर्वक अनिवार्य रुप से किया जाता है उन्हें आवश्यक कर्म कहते है।

प्रश्न २. आवश्यक कर्मे कितने होते है ?

उत्तर - आवश्यक कर्म छ: होते है। समता, वन्दना, स्तुति, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग।

प्रश्न ३. समता किसे कहते है ?

उत्तर - भेद विज्ञान पूर्वक राग-द्वेष एवं मोह आदि के अभाव को समता कहते है।

प्रश्न ४. वन्दना किसे कहते है ?

उत्तर - स्वभाव सन्मुख होना अथवा तीर्थंकरों का समूह रुप में गुणगान करना वन्दना कहलाती है।

प्रश्न ५. स्तुति किसे कहते है ?

उत्तर - स्वरुपाख्यान अथावा तीर्थंकर विशेष के गुणगान को स्तुति कहते है।

प्रश्न ६. स्वाध्याय किसे कहते है?

उत्तर - आत्म स्वरुप की तन्मयता के लिये ग्रन्थों का अध्ययन करना स्वाध्याय कहलाता है। वस्तुत: शुध्दोपयोग ही स्वाध्याय है।

प्रश्न ७. प्रतिक्रमण किसे कहते है ?
उत्तर - प्रमाद से व्रतों में उपस्थित हुए दोषों की आलोचना (निन्दा, गर्हा) पूर्वक त्याग करने को प्रतिक्रमण कहते है।

प्रश्न ८. कायोत्सर्ग किसे कहते है ?
उत्तर - शरीर से ममत्व रुप उपयोग हटाकर स्वरुप में लीन हो जाना कायोत्सर्ग है।

प्रश्न ९. शेष सप्त गुण किसे कहते है ?
उत्तर - पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रिय, निरोध और षट् आवश्यक कर्मो से बचे हुये मुनियों के शेष ७ मूल गुण को सप्त गुण कहते है।

प्रश्न १०. सप्त गुण कौन-कौन से है ?
उत्तर - १. स्नान नहीं करना। २. दातुन नहीं करना। ३. परिपूर्ण वस्त्र त्याग। ४. भूमि शयन। ५. दिन में ही एक बार आहार लेना। ६. खडे-खडे हाथ में आहार लेना। ७. केश लुंचन करना। इस प्रकार ये ७ शेष मूल गूण है।

प्रश्न ११. मुनिराज स्नान क्यों नहीं करते ?
उत्तर - शरीर से राग का अभाव होने के कारण स्नान नहीं करते।

प्रश्न १२. अदन्त धावन किसे कहते है ?
उत्तर - दांत अच्छे मोती समान चमकते हुये दिखें इस भावना से मुनिराज टूथपेस्ट आदि से दोतों का मंजन नहीं करते इसे ही अदन्त धावना मूल गुण कहते है।
दातों में से अन्त कणों को निकालने की भावना से सफाई करने से अदन्त धावन मूल गुण में बाधा नहीं है।

प्रश्न १३. मुनिराज कपडें क्यों नहीं पहनते ?
उत्तर - लज्जा गुण का अभाव एव निर्विकार हो जाने के कारण मुनिराज कपडे नहीं पहनते।

प्रश्न १४. मुनिराज जमीन में एक करवट से क्यों शयन करते है ?

उत्तर - जमीन पर एक करवट से कुछ पैर सकोड कर सोने से मन में कुविचार एवं मिथ्या स्वप्न नहीं आते और शरीर को भी सुख सुविधा देना नहीं चाहते। इसलिए मुनिराज जमीन पर शयन करते है।

प्रश्न १५. पिछली रयनि (रात्रि) किसे कहते है ?
उत्तर - अर्ध रात्रि के बाद की रात्रि को पिछली रयनि (रात्रि)कहते है।

शेष मूल गुण एवं समता

इक बार दिन में ले अहार, खडे अलप निज पान मे।
कच लांच करत न डरतत परिषह, सो लगे निज ध्यान में ॥
अरि मित्र महल मसान कंचन, कांच निंदन थुति करन।
अर्धावतारन असि प्रहारन, में सदा समता धरन ॥ ६ ॥

अन्वयार्थ - (इक बार दिन में लें आहार) मुनिराज दिन में एक बार आहार ग्रहन करते हैं (ख्ज्ञडे अलप निज पान में) खडे खडे अपने हाथ में स्वल्प आहार ग्रहण करते है (कच लोंच करत न डरत) कशलोंच करते समय निर्भय रहते है (परिषह सो) परिषहों कौ समता भाव से सहन करते है (लगे निज ध्यान में) आत्म ध्यान में लीन रहते है (अरि मित्रमहल मसान) शत्रु -मित्र शमशान और महल (कंचन कांच निंदन थ्रुति करन) कंचन और कांच में तथा निंदा औश्र प्रशंसा करने वाले में (अर्धावतारन असिप्रहारन) पूजन करने वाले और तलवार मारने वाले में (सदा समता धरन) मुनिराज सदैव समता धारण करते है।

भावार्थ - मोही जीव खाने पीने में ही अपने जीवन की सार्थकता समझते है , आत्मा सुख और समृध्दि समझते हैं, इसलिये भोजन केसमय दिन और रात भक्ष्य और अभक्ष्य के विवेक से शून्य रहते है। किन्तु मोक्ष

प्राप्ति का यत्न करने वाले यतीगण २४ घन्टे में एक बार सादा और शुध्द आहार खडे-खडे थोडा सा (अर्थात आधा पेट) अपने (प्राणी) कर पात्र में ग्रहण करते है।

संसारी जीवों को अपने बाल कितने प्यारे लगते है कि उनको सभालने केलिये जबान तो क्या ६० वर्ष तक केबुडढे भी जेब में कंधा रखें देखे जाते है परन्तु मोक्ष मार्ग केप्रेमी मुनिराज निर्भय होकर घास फूस की तरह बालों की उखाड-उखाड कर फेंक देते है और हर प्रकार केपरिषह को समता पूर्वक सहन करते हुये शुध्दात्म स्वरुप में लीन रहते है।

रागी द्वेषी प्राणी मित्र, शत्रु , महल,श्मशान आदि में इष्ट अनिष्ट कल्पना करके संसार की वृध्दि करता चला जा रहा है, किन्तु सम्यग्दृष्टि मुनिराज मित्र-शत्रु, महल-मशान, कांच-कंचन निंदक, प्रशंसक, पुजक, घातक आदि सभी में समान दृष्टि रखते हुंये अपने ज्ञायक स्वभाव से च्युत नहीं होते, अपने स्वरुप में निमग्न रहते है।

प्रश्न १. मुनिराज दिन में एक बार आहर क्यों लेते है ?
उत्तर - एक बार आहार लेने से ।ुधा रोग तो शान्त रहता है किन्तु धर्म ध्यान में बाधा नहीं आती, इसलिये मुनिराज दिन में एक ही बार आहार लेते है।

प्रश्न २. बार-बार आहर लेने से क्या हानि है ?
उत्तर - आहर बार-बार लेने से प्रमाद एवं रोग बढते है और संयम की विराधना होती है। अत: संयम की रक्षा केलिये दिन में एक बार ही आहार ल`ना आवश्यक है।

प्रश्न ३. मुनिराज खडे होकर आहार क्यों लेते है ?

उत्तर - बैठकर रुचिपूर्वक भोजन करने से पेट (उदर पूर्ण) भर जाता है और मुनिराज अल्प समय में खडे-खडे ऊनोदर आहार ल`ते है जिससे उनको ध्यान करने की सुविधा शीध्र (जल्दी)मिलती है।

प्रश्न ४. मुनिराज हाथ में भोजन क्यों करते है ?
उत्तर - परिग्रह का त्याग होने के कारण मुनिराज बर्तन न लेकर अपने हाथ में ही आहार ग्रहण करते है।

प्रश्न ५. मुनिराज बाल नाई से क्यों नहीं बनवाते ?
उत्तर - पहली बात तो मुनिराज के पास नाई को देने के लिये पैसे नहीं है, दूसरी बात स्वाबलम्बी और शरीर से निर्ममत्व होने के कारण बालों को अहिंसा व्रत के संरक्षणर्थ घास फूल वत उखाड कर अपने हाथ से फेंक देते है। अत: पराधीनता स्वीकार नहीं करते।

प्रश्न ६. परीषह किसे कहते है तथा कितने होते है ?
उत्तर - बाधा, विघ्न, आपत्ति या आक्रमण को परीषह कहते है। वे २२ होते है। इनके नाम निम्न प्रकार है -

क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्न, अरति, स्त्री चार्या, आसन , शय्या , आक्रोश, वध, याचना, अलाभ , रोग, तृण स्पर्श, मल, सत्कार-पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन।

प्रश्न ७. मुनिराज परिषह जय कैसे करते है ?
उत्तर - २२ परीषहों में से उपस्थित होने वाले किसी भी परीषह को मुनिराज ध्यान में लीन होकर समता भाव से सहन करते है, इसी को परीषह जय कहते है।

प्रश्न ८. समताधारी मुनिराज किन्हें कहते है ?
उत्तर - जो मुनिराज अरि-मित्र, महल-मसान, कंचन-कांच, निंदक-स्तुति करने वाले, पूजक व घातक में राग-द्वेष नहीं कर सुख-दु:ख जीवन मरण में भी समभाव रहते है उन्हें समता धारी मुनिराज कहते है।

मुनिराजों के विशेष कर्तव्य

तप तपें द्वादश धरें वृष दश, रत्नत्रय सेवें सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरें, चहें नहिं भवसुख कदा।
यों है सकल संयम चरित, सुनिये स्वरुपाचरण अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि, मिटे पर की प्रवृति सब ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ - (तप तपें द्वादश) मुनिराज बारह प्रकार के तपों को तपते हैं(धरें वृषदश) दस धर्मो को धारण करते है (रत्नत्रय सदा सेवें) रत्नत्रय अर्थात सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र में सदा लीन रहते है (मुनि साथ में एक विचारें) मुनिराज साधुओं के साथ या विशेष साधना होने पर अकेले भी विहार करते है(कदा भव सुख नहीं चाहते) कभी भी मुनिराज सांसारिक सुख नहीं चाहते (यों है सकल संयम चरित) इस प्रकार सकल चारित्र का विवेचन हुआ (अब स्वरुपाचरन सुनिये) अब स्वरुपाचरन की विवेचना की जाती है (जिस होत प्रगटै आपनी निधि) जिस स्वरुपाचन चारित्र के प्रगट होने पर शुध्द पर्याय (आत्म निधि)प्रगट हो जाती है (सब पर की प्रवृत्ति मिटे) और सभी पर पदार्थो में प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है।

भावार्थ - हिंसा आदि अविरत, मिथ्यात्व और अज्ञान के कारण चारों आराधनाओं सये पापी जीव

सदैव विमुख रहता है और परमाराध्य तपस्वी वृन्द सदैव अभ्यान्तर और बाहय द्वादश प्रकार के तपों में तल्लीन रहते हुये उत्तम ।मा, मार्दव, आर्जव, शौच, संयम, तप, त्याग, आर्किंचन, ब्रम्हचार्य को हृदय में धारण करते हुये सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र कय होकर निज स्वरुप में रमण करते है । ऐसे मोक्षमार्गी मुनिराज साधु संघ में रहते है या विशेष साधन करने के उपरान्त स्वतन्त्र भी विहार कर सकते है । परन्तुं इस पंचम का ल के मुनिराजों को अकेले विहार करना सर्वथा निषेध है ।

इस प्रकार व्यवहारिक सकल संयम रुप चारित्र की विवेचना के उपरान्त स्वरुपाचरण चारित्र का स्वरुप कहे है । हे भव्य जीवों ! अपने उपयोग की एकाग्रता करके सुनो । इस स्वरुपाचरणा चारित्र से अनादि काल से लगे हुये पर द्रव्य जन राग-द्वेष आदि विचकारी भाव समाप्त होकर अपने शुध्दउा स्वरुप अर्थात अनन्त गुणों से युक्त ज्ञायक स्वभावी सहज दशा प्रगट हो जाती है, अपने ज्ञायक स्वरुप में आचरण होने लगता है, स्वात्मानुभूति सहज में ही सहचरी बन जाती है एवं परमानन्द की प्राप्ति हो जाती है अपने आप मे ।

प्रश्न १. तप किसे कहते है ?
उत्तर - जिसके माध्यम से आत्मा के साथ अनादि काल से लगी हुई कर्म काजिमा को भस्म कर आत्म स्वरुप को कुन्दन सा खरा बनाया जाय, ऐसे इच्छा निराध को तप कहते है ।

प्रश्न २. तप के कितने भेद है ?
उत्तर - तप दो प्रकार के होते है । आभ्यन्तर और बाहय ।

प्रश्न ३. बाहय तप किसे कहते है ?

उत्तर - जिन्हे देखकर लोग तपस्वी की पहचान करते है । उन्हें बाहय तप कहते है अर्थात शरीरश्रित् क्रियाओं को बाहय तप कहते है ।

प्रश्न ४. उन्तरंग तप किसे कहते है ?
उत्तर - आत्म स्वरुप के विकारी भावों को प्रथाक करने की स्वरुप तन्मय प्रक्रिया को अन्तरंग तप कहेते है ।

प्रश्न ५. बाहय तप के कितने भेद है ?
उत्तर - बाहय तप के ६ भेद है । (१) अनशन (२) ऊनोदर (३) रस परित्याग (४) विविक्त शैयाशन (५) वृत्ति परिसंख्यान (६) कायक्लेश ।

प्रश्न ६. अभ्यान्तर तप के कितने भेद है ?
उत्तर - अभ्यन्तर तप के ६ भेद है । (१) प्रायश्चित (२) विनय (३) वैयावृत्त (४) स्वाध्याय (५) कायोत्सर्ग (६) ध्यान ।

प्रश्न ७. धर्म किसे कहते है ?
उत्तर - जो अक्षय, अपूर्व आनन्द की उपलब्धि कराये उसे धर्म कहते है या उत्तम ।मादि को धर्म कहते है , अहिंसा दयादि को व्यवहारिकता से धर्म कहा है ।

प्रश्न ८. दस धर्मो केनाम किसे प्रकार है ?
उत्तर - (१) उत्तम ।मा (२) मार्दव (३) आर्जव (४) शौच (५) सत्य (६) संयम (७) तप (८) त्याग (९) आकिंचन और (१०) ब्रम्हचर्य ये दस धर्म कहलाते है ।

प्रश्न ९. रत्नत्रय किसे कहते है ?
उत्तर - सम्यक्श्रध्दान, ज्ञान, चारित्र तीनों को रत्नत्रय कहते है ।

प्रश्न १०. क्या चतुर्थ काल में मुनि एकाविहारी होते थे ?
उत्तर - चतुर्थ काल में त्रिगुप्ति धारी अवधिज्ञानी विशेष साधक मुनि एकाविहारी होते थे ।

प्रश्न ११. वर्तमान पंचम काल में कोई भी मुनि एकाविहारी हो सकते है कक्या ?
उत्तर - वर्तमान पंचम काल में किसी भी मुनि को एकाविहारी नहीं होना चाहिये, क्योंकी आचार्यो ने कहा है कि पंचम काल में मुनि को किसी भी परिस्थिती में एकाविहारी नहीं रहना चाहिये, यदि एकाविहारी रहेगा तो निर्दोष संयम का पालन नही˙ किया जा सकेगा ।

प्रश्न १२. मुनिराज सांसारिक सुख क्यों नहीं चाहते ?
उत्तर - मुनिराज ने यह भली प्रकार परिज्ञान कर लिया है कि सांसारी क सभी सुख आकुलतामय ।णिक है , इसलिये सांसारीक सुखों की और से दृष्टि को मोडकर सदैव शाश्वत रहने वाले निराकुल मोक्ष सुख की प्राप्ति में प्रयत्नशील र हते है ।

प्रश्न १३. स्वारुपाचरण चरित्र किसे कहते है ?
उत्तर - निज आत्म स्वरुप में आचरण करने, तन्मय होने को स्वरुपाचरण कहते है ।

प्रश्न १४. स्वरुपाचरण चरित्र से क्या लाभ है ?
उत्तर - स्वरुपाचरण चरित्र होते ही पर परिणति समाप्त हो जाती है और निज आत्मानुभूति प्रगट होती है ।

स्वरुपाचरण चारित्र

जिन परम पैनी सुबुधि छैनी, डारि अन्तर भेदिया ।
वरणादि अरु रागादि तें, निज भाव को न्यारा किया ॥
निज मॉहिं निज केहेतु निज कर, आपको आपै गहयों ।
गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय, मंझार कछु भेद न रहयो ॥ ८ ॥

अन्वयार्थ - (जिन परम पैनी सुबुध छैनी) जिन मूनिराजों ने तीव्र धार वाली सुबुधि रुपी छैनी (अन्तर डारि भेदिया) अन्तरंग में प्रवेश कराकर भेद कर दिया (वरणादी अरु रागादि ते) स्पर्श, रस, गंध, वर्ण और राग-द्वेष आदि विकारी भावों से (निज भाव को न्यारा किया) निज

शुध्दात्म स्वरुप को प्रथक कर लिया है (निज मॉहि निज के हेतु) अपने अन्दर अपने लिये (निजकर) अपने द्वा ।रा (आपमे) आत्मा में (आपै गहयो) अपने आप अत्मा को जगा करके(गुण गुणी ज्ञाता ज्ञान ज्ञेय मंझर) गुण-गुणी, ज्ञता-ज्ञान, ज्ञेय में (कछू भेद न रहयो) कुछ भी भेद नहीं रहा ।

भावार्थ - संसार शरीर भोगों से विरक्त सम्यग्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र के पालयता जिन यतिराजों निज भेद ज्ञान बुध्दी रुपी परम तीक्ष्ण पैनी छैनी केद्वारा अन्तर भेद कर मोह आदि विकारी भावों के परदे को टूक+टूक कर दिया है और रुप, रस, गन्ध, वर्ण आदि पौद्गलिक २० गुणों से तथा रागद्वेष आदि आत्म के विकारी भ्ावों से निज आत्मा स्वरुप को प्रथ्ंक करके अपने त्रिकाली शुध्द ज्ञायक स्वरुप को अपने निर्मल ज्ञान के द्वारा जान लिया है । उस समय इनके अनुभव में यह गुण है, यह गुण्ी है तथा यह ज्ञाता है, यह ज्ञान है और यह ज्ञेय इस प्रकार का कुछ भ्ी विकल्प, भेद भाव नहीं रह जाता । अर्थात उस समय ज्ञान ज्ञेयादि के सभ्ी विकल्प विलय हो जाते है ।

.२१३

प्रश्न १. सुबुध्दि रुपी छैनी किसे कहते है ?
उत्तर - भेद विज्ञान की सुबुध्दि रुपी छैनी कहते है ।

प्रश्न २. सुबुंध्दि रुपी छैनी क्या काम करती है ?
उत्तर - अनादि काल से मिले हुये कर्माण वर्णादि और रागादि से निज आत्म स्वरुप को ज्ञान बल से पृथक कर देती है ।

प्रश्न ३. वर्णादि रागादि तथा आत्मा स्वभाव एक है क्या ?
उत्तर - वर्णादि और रगादि कर्मभाव से, आत्म स्वभ्ंाव अत्यन्त भिन्न हे ।

प्रश्न ४. वर्णादि आत्मा के नहीं है तो किसके है ?
उत्तर - रस, गन्ध, वर्ण आदि यह २० गुण पुद्गल के है ।

प्रश्न ५. रागादि भाव भी आत्मा के नहीं है क्या ?
उत्तर - राग, द्वेष, मोह आदि भाव शुध्दात्मा के नहीं है, कर्म के निमित्त से होते है । इन सभी के संयोगी भाव होने को अशुध्द निश्चय नय से आत्मा के कहा गया है ।

प्रश्न ६. आत्म स्वभाव की प्राप्ति मुनिराज किसके द्वारा करते है ?
उत्तर - आत्म स्वभाव की प्राप्ति मुनिराज अपने पुरुषार्थ के द्वारा , अपने आपमें, अपने आप का ज्ञानमय अनुभव करके करते है ।

प्रश्न ७. निज आत्म स्वभाव में लीन मुनिराज का उपयोग कैसा होता है ?
उत्तर - शुध्दात्म स्वरुप में रमण करते हुये ध्यानी यतीश्वर का उपयोग अत्यन्त निर्विकल्प होता है जिसमें गुण-गुण्ी, ज्ञाता- ज्ञेय, ज्ञानादि के विकल्पों की परि समाप्ति हो जाती है ।

.२१४.

प्रश्न ८. गुण किसे कहते है ?
उत्तर - जो वस्तु से अभिन्न रहते है या जिससे वस्तु की पहिचान होती है उन्हें गुण कहते है ।

प्रश्न ९. गुणी किसे कहते है ?
उत्तर - जिसमें गुण पाये जाते है , उसे गुणी कहते ।

प्रश्न १०. ज्ञाता किसे कहते है ?
उत्तर - जानने वाले को ज्ञाता कहते है ।

प्रश्न ११. ज्ञेय किसे कहते है ?
उत्तर - जो ज्ञान का विषय होता है उसे ज्ञेय कहते है ।

स्वरुपाचरण की विशेषता

जहॅ ध्यान ध्येय को, न विकल्प वच भेद न जहॉ ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरीया तहॉ ॥
तीनों अभिन्न अखिन्न सुध, उपयोग की निश्चल दशा ।
प्रगटी जहॉ दृग ज्ञान व्रतये, तीनधा एकैलसा ॥ ९ ॥

अन्वयार्थ - (जहॅ ध्यान ध्याता ध्येय को)जहॉ आत्म स्वरुप में ध्यान ध्याता और ध्येय के अन्दर (न विकल्प वच भेद न जहॉ) किसि प्रकार का वचन रुप विकल्प नहीं है और (चिद भाव कर्म) आत्म स्वभाव ही जहॉ कर्म है(चिदेश कर्ता) आत्म स्वभाव ही कर्ता है (तहॉ चेतना किरीया) और वहॉ आत्मस्वभाव रुप

चेतना ही क्रिया है (तीनों अभिन्न) कर्ता क्रिया कर्म भेद रहित (अखिन्न)परस्पर, अवाधित (सुध उपयोग की निश्चल दशा प्रगटी) शुध्दोपयोग निष्कांपित, अवस्था प्रगट होती है उस समय (जहॉ दृग ज्ञान व्रत) सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यकचारित्र (ये तीनधा एकैलसा)इन तीनों प्रकार का रत्नत्रय भेद रहित एक रुप प्रगट होता है ।

भावार्थ - स्वरुपाचरण चारित्र जिन भव्यात्माओं ने प्राप्त कर लिया उसकें योगों की निग्रह शीलता से निज ध्यान की सहज सिध्दि हो जाती है और ऐसी सुखद अवस्था में ध्यान और ध्याता का तथा ध्येय आदि का कोई भी भेद वाणी से कथन करने योग्य नहीं रह जाता । ऐसी निर्विकार निश्चल अवस्था में निज चैतन्य भाव ही कर्म है, निज चैतन्य ही कर्ता है, निज चैतन्य ही क्रिया है । कर्ता, क्रिया, कर्म यह तीनों भाव परस्पर अवाधित है । इन तीनों की एकता के साथ ही उपयोग में हमेशा-हमेशा के लिये निश्चलता आ जाती है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्ख्सरीत्र ये तीनों भेद रहित एक रुप शोभित होते है , इसे ही शुध्दोपयोग कहते है ।

प्रश्न १. ध्यान किसे कहते ?
उत्तर - उपयोग की एकाग्रता, स्थिरता , पंच परमेष्ठी के गुणों का चिन्तवन एवं आत्म स्वरुप में निमग्न रहने को ध्यान कहते है ।

प्रश्न २. ध्याता किसे कहते है ?
उत्तर - ध्यान करने वाले को ध्याता कहते है ।

प्रश्न ३. ध्येय किसे कहते है ?

.२१६.

उत्तर - लक्ष्य या इष्ट उद्देश्श्य की प्राप्ति को ध्येय कहते है अथवा ध्यान करने योग्य पदार्थ को ध्येय कहते है ।

प्रश्न ४. विकल्प किसे कहते है ?
उत्तर - ऊहो पोह या मन में अनेकों प्रकार की आकांक्षाओं की उत्पत्ति होने को विकल्प कहते है ।

प्रश्न ५. शुध्दोपयोग किसे कहते है ?
उत्तर - जिसमें ध्यान, ध्याता, ध्येय आदि का विकल्प समाप्त हो जाता है ऐसे निर्विकार आत्मा केज्ञायक उपयोग को शुध्दोपयोग कहते है ।

प्रश्न ६. शुध्दोपयोगी आत्माकेकर्ता कर्म क्रिया कैसे सिध्द होते है ?
उत्तर - ज्ञानानन्दोपयोगी आत्मा का निज शुध्दात्म उपयोग रुप चेतन ही कर्ता है और त्रिकाली ज्ञायक परिणति ही उस की क्रिया है ।

प्रश्न ७. चिदभाव कर्म कैसे है ?
उत्तर - अपना स्वभाव भाव ही अपने को इष्ट होने केकारण प्राप्तव्य कर्म है ।

प्रश्न ८. आत्म कर्ती है क्या ?
उत्तर - निश्यच नय से आत्मा अपने स्वभाव का ही कर्ता है ।

प्रश्न ९. शुध्दोपयोग में क्रिया कैसी होती है ?
उत्तर - शुध्दोपयोग में निर्विकल्प शुध्दात्मानुभूति रुप क्रिया होती है ।

प्रश्न १०. उपयोग किसे कहते है ?

.२१७.

उत्तर - ज्ञान दर्शन रुप आत्म परिणति को उपयोग कहते है ।

प्रश्न ११. उपयोग केकितने भेद है ?
उत्तर - उपयोग केतीन भेद है । (१) अशुभ उपयोग (२) शुभ उपयोग (३) शुध्दोपयोग ।

प्रश्न १२. अशुभ उपयोग और उसका फल क्या है ?
उत्तर - योगों की कुटिलता केसाथ उपयोग को अशुभ उपयोग कहते है और उसका फल नरक, निर्यञ्च आदि खोटि गति है ।

प्रश्न १३. शुभ उपयोग और उसका फलका फल क्या है ?
उत्तर - सच्चे देव, शास्त्र , गुरु और स्वान्मुखी दृष्टि को शुभ उपयोग कहते है और इसका फल देव- देवन्द्र आदि पर्याय केसाथ परम्परा से मोक्ष है ।

प्रश्न १४. शुध्दोपयोग और उसका फल क्या है ?
उत्तर - ज्ञायक स्वभाव मात्र को शुध्दोपयोग कहते है और उसका फल साक्षात् मोक्ष सुख की प्राप्ति है।

प्रश्न १५. शुध्द उपयोग और निश्चय रत्नत्रय में क्या अन्तर है ?
उत्तर - निश्चय रत्नत्रय और शुध्द उपयोग में कोई अन्तर नहीं है , दोनों पर्याय वाची है। संज्ञा आदि की अपेक्षा से भेद किये गये है।

स्वरुपाचरण से पूर्व

परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखैं।
दृग- ज्ञान सुख - बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो बिखैं ॥
.२१८.

मै साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनितैं।
चित पिंड चंड अखंड सुगुण- करंड च्युत पुनि कलनिर्त ॥ १० ॥

अन्वयार्थ - (परमाण नय निक्षेप को) प्रमाण नय निक्षे्प का(उद्योत अनुभव में दिखै) प्रकाश अनुभव में नहीं आता है (दृग ज्ञान सुख बल मय) दर्शन, ज्ञान सुख और बल मय हूँ (आन भाव जु मो नहिं) अन्य विकारी परिणाम मेरे अन्दर नहीं है (मैं साध्य साधक) मैं ही साध्य और मैं ही साधक हूँ (मैं कर्म आरु तस फलन तैं अबाधक) मैं कर्म और उनके फल की बाधा से रहित हूँ (चिद पिंड चंड अखंड) मैं चैतन्य धन ऐश्वर्य शाली अद्वितीय (सगुण करंड) अच्छे गुण रत्नों का भण्डार हूँ और (पूनि कलनितैं च्युत) कर्म मल से रहित हूँ।

भावार्थ - स्वरुपाचरण की महिमा अचिंत्य है। इसके पूर्व में ही मुक्ति सुन्दरी के प्रेमी साधक यतियों के उपयोग में प्रमाण नय निक्षेप आदि का प्रकाश प्रभावित नहीं रहता। वह ऐसा चिन्तवत करते है कि मात्र मै दर्शन, ज्ञान, सुख, वीर्य रुप हूँ, ज्ञानावरणादि कर्म और उनके इष्ट अनिष्ट फलों की बाधा से भी मैं परे हूँ अर्थात कर्म और कर्म फल ब चेतन औश्र अमूर्तिक हूँ, इनसे मेरा वास्तविक सम्बन्ध नहीं है। मै तो चैतन्य ज्ञानादि गुणों का पिण्ड हूँ। विश्व की कोई भी शक्ति मेरे अस्तित्व को मिटा नहीं सकती। मै चिदानन्द स्वरुप अनन्त गुणों की खनि हूँ और औदारिक आदि शरीर तथा अन्य विकारी भावों से अत्यन्त भिन्न हूँ।

प्रश्न १. प्रमाण किसे कहते है ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान को प्रमाण कहते है अथवा जिस ज्ञान मैं समग्र वस्तु एक साथ आती है उसे प्रमाण कहते है।

.२१९.

प्रश्न २. नय किसे कहते है ?
उत्तर - सम्यग्ज्ञान के अंश को नय कहते है अथवा वस्तु के एक पक्ष का सापेक्ष ज्ञान करने को नय कहते है।

प्रश्न ३. निक्षेप किसे कहते है ?

उत्तर - प्रमाण और नय के अनुसार प्रचलित हुये लोक व्यवहार को निक्षेप कहते है , किसी वस्तु की किसी भी वस्तु में स्थापना करने को निक्षेप कहते है।

प्रश्न ४. स्वरुप में आचरण करने से पूर्व मुनिराज कैसा चिंतवन करते है ?
उत्तर - स्वरुप में आचरण करने वाले मुनिराज अपने मन में विचार करते है कि मैं सभी विभ्ावों से परे ज्ञान , दर्शन, सुख, वीर्य रुप हूँ।

प्रश्न ५. शुध्दोपयोगी मुनिराज को प्रमाण और नय के विकल्प हैं क्या ?
उत्तर - ध्यान में अवस्थित मुनिराज को नय, निक्षेप के विकल्प ह्रदय में नही होते।

प्रश्न ६. बिन नय और निक्षेप के वस्तु स्वरुप को मुनिराज कैसे समझते है ?
उत्तर - जानते तो नय निक्षेप से ही हैं, किन्तु ध्यान में विकल्पता नहीं रहती है।

प्रश्न ७. ज्ञानोपयोगी मुनिराज कैसा चिंतवन करते है ?
उत्तर - ज्ञानोपयोगी मुनिराज निरंतर ऐसा चिन्तवन करते हैं कि मैं साध्य व साधक हूँ तथा कर्म और उनके फलों से सर्वथा परे हूँ।

.२२०.

प्रश्न ८. स्वरुपोंपलब्धि में संलग्न मुनिराज कैसा चिंतवन करते ?
उत्तर - स्वरुपोपलब्धि में सं लग्न मुनिराज चिंतबन करते है कि मैं चैतन्य अनन्त गुण स्वरुप हूँ।

प्रश्न ९. मुनि शरीररादि को अपना मानते है य नहीं ?
उत्तर - मुनिराज शरीरादि द्रव्य कर्म , भाव कर्म नो कर्म से अपने आपको सर्वथा पृथक है।

स्वारुपाचरण में आनन्द और केवलज्ञान

यौं चिन्त्य निज में थिर भये, तिंन अकथ जो आनन्द लहो।
सी इन्द नाग नरेंन्द्र वा, अहमिन्द्र केन हीं कहयो ॥
तब ही शुकल ध्यनागिन करि, च उधाति विधिकानन दहयो।
सब लख्यो केवन ज्ञान करि, भवि लोक को शिवमगक हयो ॥ ११।

अन्वयार्थ - (यों चिन्त्य निज में थिर भये) इस प्रकार तत्व चिन्तवन करते हये जिन मुनिराजों का उपयोग अपने आप में स्थिर हो गया है (तिन अकथ जो आनन्द लहयो)उन मुनिराजों ने वाचनातीत जो आनन्द लिया है (सो इन्द्र नाग नरेन्द्र) वह आनन्द इन्द्र, नागेन्द्र और नरेंन्द्रो(वा अहमिन्द्र के नाहीं कहयो) अहमिन्द्र आदि के भी नहीं है (तब ही शुकल ध्यानाग्नि कर) (उपयोग की स्थिरता से निजानन्द का पान करने वाले मुनिराज) उस ही समय शुक्ल ध्यान रुपी अग्नि के द्वारा (चउ घातिविधि कानन दहयो) चारों घातिया कर्म रुपी सघन वन को जलाकर (सब लख्यो केवल ज्ञान कर) सारे विश्व के पदार्थो का अवलोकन केवलज्ञान के द्वारा करके(भवि लोक को शिवमग कहयो) तीनों लोकों के भव्य प्राणियों के लिये मोक्षमार्ग का उपदेश देते है।

.२२१.

भावार्थ - शुध्दोपयोगी निज स्वभाव में आचरण करने वाले मुनिराज का उपयोग जब पिजस्वरुप में स्थिर होता है उस समय वचनातीत अक्षय अनुपन आनन्द का अनुभव करते है

। ऐसा आनन्द स्वर्गो में निरन्तर भोगोपभोग में लीन रहने वाले इन्द्र, नाग, नागेन्द्र, अहमिन्द्र आदि नहीं ले पाते, क्योंकि स्वर्गो में या चक्रवर्ती आदि को जिस आनन्द की अनुभूति होती है वह आनंद इन्द्रिय जन्य है, ।।णिक है। हर इन्द्रिय की लालसा पूर्ण होनें के बाद ज्ञानियों के खेद की रेखा उभर आती है। इन्द्रिय जन्य जितना भी आनन्द्र है वह आकुलता व्याकुलता सहित है, चिन्ताओं का जनक है। स्वरुपाचरण चारित्र में अर्न्तध्यान मुनिराजों को अक्षय आनन्द आता है, उस आनन्द की किसी लौकिक आनन्द से उपमा नहीं की जा सकती।

स्वरुपाचरण चारित्र में पूर्ण लीन होते ही तत्क्षण शूक्ल ध्यान रुपी अग्नि ।से ज्ञानवरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चार घतिया कर्म रुपी सघन जंगल भस्म हो जाता है और केवल ज्ञान रुपी सुर्य के उदय आलोक से अखिल विश्व में व्याप्त गुण एवं पर्याय सहित सभी पदार्थो की अवलोकन शक्ति पाकर मोक्ष सुख के प्रेमी भव्यात्माओं को अक्षय अनन्त सच्चे सुख का मार्ग उपलब्ध होता है।

प्रश्न १. स्वरुपाचरण का आनन्द अनुभव गम्य है उसे शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है।
उत्तर - स्वरुपाचारण का आनन्द अनुभव गम्य है उसे शब्दों में व्यक्त करना संभव नहीं है।

.२२२.

प्रश्न २. क्या स्वरुपाचरण चारित्र के आनन्द की तुलना किसीसे की जा सकती है ?
उत्तर - लोक में मनुष्यों में चक्रवर्ती, स्वर्गो में इन्द्र, अहमिन्द्र आदि इन्द्रिय जन्य आनन्द का प्रतिक्षण उपभोग करते रहते है, परन्तु वह आनन्द्र भी विकल्पों से घिरा हुआ है अत: स्वरुपाचरण में लीन रहने वाले मुनिराजों के आनन्द की तुलना किसी भी लौकिक इन्द्रिय जन्य आनन्द से नही की जा सकती।

प्रश्न ३. रुवरुप में आचरण करने वालों के आनन्द्र को हम क्यों नहीं समझा पा रहें ?
उत्तर - जैसे कोई मिश्रा खाने वाला आदमी हि मिश्री के मिठास का अनुभाव कर पाता है, मात्र देखने सुनने बाला नहीं। उसी प्रकार स्वरुपाचरण परमोत्कृष्ट मिश्री है जिसका आनन्द स्वरुप में रमण करने वाले मुनिराज ही अनुभव कर पाते है , रागी द्वेषी आत्मा नहीं।

प्रश्न. ४. क्या हम भी स्वरुपाचरण चारित्र जन्य आनन्द का अनुभव कर सकते है ?
उत्तर - स्वरुप में अवस्थित दिगम्बर मुनिराजों को अनुशरण करने पर ही हम भी स्वरुप के आचरण जन्य आनन्द का अनुभव कर सकते है।

प्रश्न ५. स्वरुपाचरण चारित्र कौन से गुणस्थान में होता है ?
उत्तर - स्वरुपाचरण चारित्र सप्तम गुणस्थान से होता है। श्रध्दान की अपेक्षा चौथें और पूर्णतया की अपेक्षा बारहवे गुणस्थान में होता है।

.२२३.

प्रश्न ६. क्या चौथे गुणस्थान में स्वरुपाचरण चारित्र नहीं होता ?
उत्तर - चतुर्थ गुणस्थान के चारित्र को स्वरुपाचरण चारित्र नहीं कह सकते। आचार्यो ने चौथे गुणस्थान के चारित्र को सम्यक्त्वाचरण चारित्र बतलाया है।

प्रश्न ७. स्वरुपाचारण चारित्र से क्या लाभ है ?
उत्तर - स्वरुपाचरण चारित्र के साथ शुक्ल ध्यान रुपी अग्नि प्रज्वलित होकर घतिया कर्म रुपी सघन वन को जलाकर भस्म कर देती है।

प्रश्न ८. घातिया कर्मो के भस्म होने से क्या उपलब्धि होती है ?
उत्तर - चारों घातिया कर्मो के।ाय हो ज।ने से केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

प्रश्न ९. केवल ज्ञान किसे कहते है ?
उत्तर - ज्ञान की परिपूर्णता या।ायिक ज्ञान को केवलज्ञान कहते है।

प्रश्न १०. केवलज्ञान प्रगट हो जाने से क्या लाभ है ?
उत्तर - केवलज्ञान प्रगट होते ही अखिल विश्व के चराचर पदार्थ उस ज्ञान में ज्ञेय बन जाते है और केवलज्ञान के अनन्तर स्वाभाविक वीतराग दिव्यध्वान के द्वारा भव्यात्माओं के लिये मोक्ष मार्ग का उपदेश मि लता है।

सिध्द स्वरुप

पुनि घाति शेष अघाति विधि, छिन मॉहिं अष्टम भू बसै।
वसु कर्म विनसे सुगुण वसु, सत्यक्त्व आदिक सब लसैं ॥

.२२४.

संसार खार अपार पारावार, तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरुप शुचि चिद्रूप अविनाशी भये ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ - (पुनि) इसके बाद (शेष अघा विति।धि धाति) शेष अघातिया कर्मी का घात कर (छिन मॉहि अष्टम भू बसे) छिन मात्र में लोक के अग्र भाग में विराजमान हो गए(बसु कर्म बिनसे) अष्टकर्म नष्ट होने पर (सगुण वसु) सम्यक्त्व आदि निर्मल आठ गुण(सब लसे) सभी प्रगट हो गये(संसार खार अपार पारावार) संसार रुपी खारे और अगांध समुद्र को (तर तीरहिं गये) तैरकर संसार समुद्र से किनारे को प्राप्त हुये(अवि कार अकल अरुप)शुध्द (दर्शन, ज्ञान) चैतन्य स्वरुप अमरता को प्राप्त हो गये।

भावार्थ - घातिया कर्म आत्म स्वभाव का घात अनादि काल से करते आ रहे है। रत्नत्रय पुरुषार्थ के बल यसे ऐसे घातिया कर्म का विध्वंस हो जाने पर शेष अघातिया कर्म अर्थात नाम, गोत्र आयु और वेदनीय कर्मो की परि समाप्ति होते ही यह विशुध्द आत्मा एक समय मात्र में लोक के अ्ग्रभाग में हमेशा-हमेशा के लिये सुव्यवस्थित रुप से आसीन हो जाता है। आठों कर्मो के अभाव में क्रमश: आत्मा के निजी विशुध्द समकित, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहनत्व, सुक्ष्मत्व, वीर्यत्व, अव्याबाध ग्रह आठ गुण प्रगट होते है।

सभी विशुध्द गुणों की प्राप्ति के सारथ ही शुध्दात्मा संसार रुपी अथाह खारे समुद्र से तिर करके मोक्ष रुप किनारे से लग जाते है और सभी विकारों से रहित आशरीरी, अरुपी , शुध्द चैतन्य स्वरुप मय होकर जन्म-मरण से रहित अजर अमर पद को प्राप्त कर लेते है।

.२२५.

१. घातिया कर्म किप्रश्न से कहते है ?
उत्तर - जो आत्मा के ज्ञानादि गुणों को विकृत करते हो अर्थात बिभाव की ओर ले जाते हो उन कर्मो को घातिया कर्म कहते है।

प्रश्न २. अघातिया कर्मे किसे कहते है ?

उत्तर - जो कर्म आत्म के ज्ञानादि गुणों का विघात नहीं करते, परन्तु उनके रहते मोक्ष अवस्था को प्राप्त नहीं कर पाते उन्हें अघातिया कर्म कहते है।

प्रश्न ३. अष्टम भूमि किसे कहते है ?
उत्तर - लोक के अग्रभाग की भूमि को अर्थात सिध्द शिला को अष्टम भूमि कहते है।

प्रश्न ४. कर्म किसे कहते है ?
उत्तर - जिनके माध्यम से जीव को संसार अवस्था में इन्द्रिय जन्य सुख-दुख की प्राप्ति होती है उसे कर्म कहते है।

प्रश्न ५. कर्म कितने प्रकार के होते है ?
उत्तर - कर्म आठ होते है - ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र, अन्तराय।

प्रश्न ६. सिध्द अवस्था में कौन कौन गुणों की प्राप्ति होती है ?
उत्तर - समकित, दर्शन, ज्ञान, अगुरुलघु, अवगाहनत्व, सुक्ष्मत्व वीर्यत्व और अव्यावाध इन आठ गुणों की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ७. कौन कर्म के अभाव में कौन गुण की उपलब्धि होती है ?

उत्तर - ज्ञानावरणी कर्म के अभाव में अनन्त ज्ञान, दर्शनावरणी कर्म के अभाव में अनन्त दर्शन, मोहनीय कर्म के आभाव में सम्यक्त्व, (अनन्त सुख) अन्तराय कर्म के अभाव में अनन्त वीर्य, वेदनीय कर्म के अभाव में अबगाहनत्व, नाम कर्म के आभाव में सुक्ष्मत्व एवं गोत्र कर्म के अभाव में अगुरुलघुत्व गुण की उपलब्धि होती है।

प्रश्न ८. सिध्द पर्याय की उपलब्धि कैसे होती है ?
उत्तर - घाति और अघाति सभी कर्मो की परिसमाप्ति के साथ ही सिध्द पर्याय की प्राप्ति होती है।

प्रश्न ९. मुक्त जीवों का निवास काहॉ पर है ?
उत्तर - निश्चय से मुक्त जीवों का निवास अपने स्वारुप में है , परन्तु व्यावहार से अष्टम भूमि अर्थात लोक के अग्र भाग में ४५ लाख योजन प्रमाण सिश्द शिला पर मुक्त जीवों का निवास है।

प्रश्न १०. कर्म सहित जीव भी सिध्द शिला पर रह सकते है क्या ?
उत्तर - सामान्यतया सिध्द शिला पर मुक्त जीवों का ही निवास है परन्तु विशेष रुप से सूक्ष्म निगोदिया जीवों का भी अस्तित्व पायो जाता है।

प्रश्न ११. सिध्द शिला पर रहने वाले निगोदिया जीवों को अनन्त सुख की उपलब्धि हो जाती है क्या ?

उत्तर - मोक्ष अवस्था में यह आत्मा शरीर एवं विकारों से रहित परम शुध्द अकूर्तिक चैतन्य गुणों से सहित अनन्त आनन्द में लीन रहता परन्तु निगोदिया जीव विकारी है अत: उसे अनन्त सुख की उपलब्धि नहीं होती।

प्रश्न १२. सिध्दालय से लौटकर यह आत्मा कब आता है ?

उत्तर - कर्मो से छुटकर जिन आत्माओं ने मोक्ष सुख की प्राप्ति कर ली वे आत्मा संसार में लौटकर पुन:
कभी भी नहीं आते है, मोक्ष सुख में ही आसीन रहते है।

मोक्ष पर्याय की महिमा

निज मॉहि लोक अलोक गुण, पर्याय प्रति बिम्बितभये।
रहि हैं अनन्तानन्त काल, यथा तथाशिव परिणये ॥
धनि धन्य है जे जीव नरभव, पाय यह कारज किया।
तिनही अनादि भ्रमण पंच, प्रकार तजि वर सुख लिया ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ - (निज मॉहि लोक अलोक) अपने ज्ञान के अन्दर लोक औश्र आलोक (गुण पर्याय प्रतिबिम्बित भये) तथा गुण पर्याय स्पष्ट रुप से झलकने लगते हैं (यथा शिव परिणये) जिस अवस्था से मोक्ष की प्राप्ति होती है (तथा अनन्तानन्त काल रहि है) उसी अवस्था में अर्थात पुरुषाकार अनन्त गुणों में अनन्तानन्त काल पर्यन्त रहते है (जे जीव नरभव पाय) जिन भव्यात्माओं ने मनुष्य पर्याय को प्राप्त कर(यह कारज किया)(यह मुनिपद को धारण कर) मोक्ष प्राप्ति रुप यह कार्य किया है वे (जीवधनि धन्य है) विशेष प्रशंसा केपात्र हैं (तिन ही अनादि पंच प्रकार भ्रमण तजि)ऐसे ही भव्यात्माओं ने अनादि काल से चले आ रहे पंच परावर्तन रुप संसार से छुटकर (वर सुख लिया)उत्तम शाश्वत सुख की प्राप्ति की है।

भावार्थ - सभी पदार्थो में श्रेष्ठ मोक्ष पदार्थ है इसका कारण यह है कि जिन-जिन भव्यात्माओं ने भी पुरुषार्थ केबल से मोक्ष को प्राप्त कर लिया है वह कृतकृत्य हो गये है। कोई भी कार्य करने केलिये शेष

नहीं रहता। सभभ प्रकार की चिन्तायें, वासनायें विकार भाव, पर परणति हमेशा केलिये विदाई ले लेती है। उन भव्यात्माओं के अन्दर लोक तथा अलोक और सभी द्रव्यों के गुण पर्याय दर्पणवत प्रतिबिम्बित होते है। जिस परम पारिणामिक भाव से अनन्त गुणों सहित आत्म प्रदेशों से मोक्ष पुरुषाकार पर्याय में अवस्थित होते है उसी अवस्था में अनन्तानन्त काल पर्यन्त स्थायी रहते है।

वे भव्यात्मायें परम पशंसनीय एवं धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने मनुष्य पर्याय को पाकर मुनिपद को अंगीकार कर महाव्रतों केसाथ स्वरुपाचारण चारित्र केब ल से निज स्वरुप में आनन्द प्राप्त किया है। ऐसे ही परम विवेकी भव्यात्मायें अनादि काल से चले आ रहे पंच परावर्तप रुप संसार भ्रमण का परित्याग कर, मोक्ष अवस्था में सच्चे सुख की प्राप्ति करते है।

प्रश्न १. मोक्ष अवस्था में आत्मा क्या करता है ?

उत्तर - मोक्ष अवस्था में यह आत्मा परमानन्द का अनुभव करता हुआ विश्व केसमस्त पदार्थो का ज्ञाता रहता है अर्थात समस्त पदार्थ उनकेज्ञान में प्रतिबिम्बित रहते है।

प्रश्न २. मोक्ष में जीव किस अवस्था में रहता है ?
उत्तर - जिन अनन्त गुणों के साथ पुरुषाकार रुप मोक्ष की प्राप्ति होती है उसी अवस्था में यह आत्म अनन्त काल पर्यन्त रहता है।

प्रश्न ३. मनुष्य पर्याय की सार्थाकता किस में है ?

उत्तर - मनुष्य पर्याय की सार्थकता अणुव्रत महाव्रतों के साथ स्वरुपाचरण चारित्र में लीन होकर मोक्ष सुख की प्राप्ति करने में है।

प्रश्न ४. संसार परिभ्रमण से कौन बच पाताहै ?
उत्तर - संसार, शीरर, भोगों से विरक्त तथा रत्नत्रय में अनुरक्त आत्मा ही संसार परिभ्रमण से बच पाता है।

प्रश्न ५. सच्चे सुख की प्राप्ति कौन करता है ?
उत्तर - जो भव्यात्मा सम्यक्त्वाचरण और संयमाचरण के साथ स्वरुपाचरण की उपलब्धि करता है वही सच्चे सुख की प्राप्ति कर पाता हे।

रत्नत्रय का फल और भव्य आत्माओं को प्रेरणा

मुख्योपचार दुभेद यों, बडभागी रत्नत्रय धरें।
अरु धरेंगे ते शिव लहें तिन, सुयश - जल जग मल हरें ॥
इमि जानि आलस हानि साहस, ठानि यह सिख आदरो।
जब लों न रोग जरा गहै, तब लों झटिति निज हित करो ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ - (यों मुख्योपचार दुभेद)इस प्रकार मुख्य और उपचार दो प्रकार का(रत्नत्रय बडभागी धरें) रत्नत्रय परम भाग्यशाली भाव्यात्मायें धारण करती है (अरु धरेंगे ते शिव लहे) और रत्नत्रय को जो भव्यात्मायें धारण करेंगी वे मोक्ष सुख की प्राप्ति करेंगी (तिन सुयश जल जग मल हरें) उन रत्नत्रय धारी भव्यात्माओं का सुयश अर्थात सदकीर्ति रुपी जल संसार रुपी मल को प्रक्षालित करेगा (इमि जानि आलस हानि साहस ठानि)इस तरह रत्नत्रय के फल को समझते हुये सभी प्रकार केआलस को छोडकर, साहस करके(यह सिख

आदरो) यह मोक्ष मार्ग पर चलने वाले उपदेश को जीवन में उतारों(जबलों न रोग जरा गहै) जब तक किसी प्रकार का रोग और बुढापा नहीं आता (तब लों झटिति निज हित करो) तब तक अति शीघ्र आत्म हित में सं लग्न हो जाओ।

भावार्थ - मोक्ष एक है और उसका मार्ग भी एक है परन्तु पात्रों की अपेक्षा आचार्यो ने रत्नत्रय केदो भेद किये है , मुख्य और उपचार। इसे निश्चय और व्यवहार रत्नत्रय के नाम से भी कह सकते है। वे भव्यात्मायें परम सौभाग्यशाली है जिन्होंने इन दोनों प्रकार के रत्नत्रय को धारण किया है। वर्तमान काल में जो-जो भव्यात्मायें यथा शक्ति इस रत्नत्रय अथङ्र्ात सम्यग्दर्शेन, ज्ञान, चारित्र को यथा शक्ति अपने जीवन में धारण करेंगे वे निश्चित ही शिवसुख को प्राप्त करेंगे। तथा रत्नत्रय धारी भव्यात्मायें ही सुयश रुपी परम पवित्र जल से संसार, शरीर, भोगों रुपी मल को धोकर हमेशा केलिये स्व स्वरुप को परम पावन बना लेते है

अथर्ज्ञत राग- द्वेष , मोह, लोभ, ।ोभ, आदि सभी विकारों से ररहित होकर स्व स्वरुप में अवस्थित हो जाते है ।

इस रत्नत्रय और स्वरुपाचरण चारित्र केफल को समझकर सभभ प्रकार केप्रमादों से मुैक्त होकर मोक्ष मार्ग पर चलने केलिये साहस करकेगुरुओं की इस शिक्षा को जीवन में उतारो । जब तक रोग और बुढापा आकर अपना कब्जा न जमाये उससे पूर्वही अतिशीघ्र रत्नत्रय को धारण करकेनिज आत्महित में संलग्न होजाओ, तभी इस नर पर्याय का पाना सार्थ्क होगा ।

.२३१.

प्रश्न १. रत्नत्रय किसे कहते है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों की एकता को रत्नत्रय कहते है ।

प्रश्न २. मोक्ष मार्ग किसे कहते है ?

उत्तर - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र इन तीनों को मोक्ष मार्ग कहते है ।

प्रश्न ३. क्या दर्शन या ज्ञान या चारित्र एक-एक को मोक्ष मार्ग नहीं कहते ?

उत्तर - दर्शन, ज्ञान या चारित्र की यह एक-एक अपने आप में मोक्षमार्ग नहीं है । सम्यक रुप से इन तीनों की एकता ही मोक्ष मार्ग है ।

प्रश्न ४. रत्नत्रय केकितने भेद है ?

उत्तर - रत्नत्रय केदो भेद है , निश्चय और व्यवहार ।

प्रश्न ५. उन दोनों प्रकार केरत्नत्रय को कौनकौन धारण करता है ?

उत्तर - विशेष सौभाग्यशाली, निकट भव्य, परम पुण्यशाली आत्मा ही इन दोनों प्रकार के रत्नत्रय को धारण कर पाता है ।

प्रश्न ६. क्या पापी आत्मा रत्नत्रय धारण करने केपात्र नहीं है ?

उत्तर - पापी आत्मा रत्नत्रय धारण करने केपात्र नहीं है , क्योंकि अशुभ कर्म केउदय में रत्नत्रय धारण करने की भावना नहीं बन पाती । अत: निकट भव्य परम सौभाग्यशाली पुण्यात्मा ही रत्नत्रय को धारण कर पाते है ।

.२३२.

प्रश्न ७. रत्नत्रय धारण करने से क्या लाभ हे ?

उत्तर - रत्नत्रय धारण करने से सारे विश्व में सुयश तो फैलता ही है, परन्तु रत्नत्रय रुपी जल से कर्म मल छूट कर शिव सुख की प्राप्ति होती है ।

प्रश्न ८. रत्नत्रय धारी महापुरुषों से क्या शिक्षा लेनी चाहिये ?

उत्तर - रत्नत्रय धारी महापुरुषों से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि सभी प्रकार केआलस्यों को छोडकर साहस केसाथ अनन्त सुख केकारण रत्नत्रय को यथा शक्ति धारण करें ।

विशेष उपदेश

यह राग आग दहै सदा, तातै समामृत सेइये ।
चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निज पद बेइये ॥
कहा रच्यौ पर पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै ।

अब दौ ल ! होउ सुखी स्वपद रचि, दाव मत चूको यहै ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ - (यह राग आग दहै सदा) यह राग रुपी आग हमेशा से जलती आ रही है (ताते समामृत सेइये)इसलिये समता रुपी अमूत का सेवन करना चाहिये (चिर भजे विषय कषाय) अनादि काल से विषय कषाय का सेवन किया है (अब तो त्याग निज पद बेइग्र) अब विषय कषायों को छोडकर अपने सिध्दपद की प्राप्ति करो (कहा रच्यो पर पद में) पर पद में क्यों लीन है (सह पद तेरो न) यह पर पद तेरा स्वरुप नहीं है (क्यों दुख सहैं) क्यों दुख प्राप्त कर रहा है (अब दौल स्वपद रच सुखी होउ) अब हे दौलतराम ! (आत्मा) अपने स्वरुप मुं लीन होकर सुखी बनो (यह दाव मत चूको) यह सु अवसर प्राप्त हुआ है इसे चूकना नहीं ।

.२३३.

भावार्थ - श्री पंडीत प्रवर दौलतराम जी स्वयं को सम्बोधन के साथ सभी भव्यात्माओं के संबोधित कर रहे है कि हे भाइयो ! यह राग रुपी अग्नि संसार में रागी द्वेषी जीवों को अनादिकाल से जलाती आ रही है अर्थात राग- द्वेष से ।ाण मात्र के लिए भी शांति की अनुभूति नहीं हो पा रही है । इस राग रुपी आग को शान्त करने के लिए समता रुपी अमृत जल ही सक्षम है । इसलयि मोक्ष के प्रेमी भव्यात्माओं को निरन्तर समता रुपी अमृत का पान करना चाहिए । अनादिकाल से दु:खों के कारण विषय कषायों का सेवन किया है, अब अवसर प्राप्त हुआ है सभी विषय कषायों का परिपूर्ण त्याग करके आत्मा के निज ज्ञायक स्वभाव को प्राप्त करना चाहिए ।

परतत्व (पर पद) में लीन रहना अज्ञानता है, वह हमारा स्वयं का पद नहीं है । पर पद में रहकर अनादि काल से दु:ख उठाना पड रहा है, इयलिए हे भ्ंव्यात्माओ ! उत्तम कुल, मनुष्य पर्याय जैसा अवसर प्राप्त हो गया है अब सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र को धारण करके यथार्य सुख एवं शान्ति का सम्यक् उपाय खोज लो । अगर प्रमाद में अज्ञान में समय व्यतीत कर दिया तो सिवाय पश्चातापों के कुछ भी हाथ लगने वाला नहीं है ।

प्रश्न १. राग को आग क्यों कहा है ?

उत्तर - जैसे अग्नि ईंधन को जलाती है उसी प्रकार से यह राग आत्मा को विभाव परिणाम रुप से जलाता है इसलिए राग को आग कहा है ।

प्रश्न २. राग रुपी आग की शान्त कैसे किया जा सकता है ?

उत्तर - समता रुपी जल से ही राग रुपी आग को शान्त किया जा सकता है ।

.२३४.

प्रश्न ३. अनादि काल से जीव ने क्या किया है ?

उत्तर - अ नादि काल सेउजीव ने विषय कषायों् का सेवन करके दु:ख और अशान्ति को प्राप्त किया है ।

प्रश्न ४. अब हमें क्या करना चाहिये ?

उत्तर - विषय कषायों का त्याग करके निज स्वरुप में रमण करने का पुरुषार्थ करना चाहिये ।

प्रश्न ५. दौलतराम जी ने छहढाल में क्या कहा है ?

उत्तर - पंडित दौल तराम जी ने छहढाल में भव्य जीवों को संबोधित करते हुए कहा है कि हे भव्यात्मा ओ ! यह मनुष्य पर्याय और उत्तम कुल की प्राप्ति हुई है । इसका उपयोग करते ुए

पर वस्तुओं से ममत्व छोडकर अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए निज में शुध्द ज्ञानानन्द प्राप्त कर शाश्वत आनन्द का अनुभव करो।

ग्रंथ निर्माण

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज शुकल वेशाख।
करयों तत्व उपदेश यह लखि बुधजन की भाख ॥
लघु धी तथा प्रमाद तें, शब्द अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढों सदा, जो पावो भव कूल ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ - (इक नव वसू इक वर्ष की तीज शुकल वैशाख)विक्रम संवत की १८९१ वैशाख वदी तीज के दिन (करयो तत्व उपदेश यह लखि बुधजन की भाख) बुधजन कृत छहढाल के माध्यम से यह तत्व उपदेश किया है (लघु धी तथा प्रमाद तें शब्द अर्थ की भूल) अल्प बुध्दि तथा प्रमाद से शब्द और अर्थ की भूल रहना सम्भव है (सुधी सुधार पढों सदा) हे विद्वज्जन ! अगर भूल रह गई हो तो उसे सुधार कर पढना (जो पावो

भव फूल) यदि संसार समुद्र से तिरना चाहते हो तो।

भावार्थ - श्री पंडीत प्रवर दौलतराम जी अपनी अल्पज्ञता प्रगट करते हुए कहते है कि मैने पंडित प्रवर बुधजन दास जी कृत छहढाल का आश्रय लेकर विक्रम संवत १८९१ की अक्षय तृतीया के दिन कह तत्वोपदेश छहढाल के नाम से पूर्ण किया है। अगर कहीं भेरी बुध्दि की मन्दता व प्रमाद के कारण शब्द और अर्थ की भूल रह गई हो तो तत्वज्ञान के प्रेमी बुध्दिमान विद्वज्जन उसे सुधार कर पढें जिससे संसार समुद्र से तिरकर मोक्ष सुख की प्राप्ति हो।

प्रश्न १. छहढाल में पंडित दौलतराम जी ने किसकी विवेचना की है ?
उत्तर - छहडाल में पंडित दौलतराज जी ने हमारी, आपकी सभी प्राणियों की जीवन गाथा की विवेचना की है।

प्रश्न २. छहढाल रचने का उद्देश्य क्या है ?
उत्तर - पंडित दौलतराम जी का उद्येश्य है कि सभी प्राणी चारों गतियों के दुख: से बचकर मोक्ष सुख की प्राप्ति करें।

प्रश्न ३. छहढाल की रचना दौलतराम जी ने अपने मन से की थी क्या ?
उत्तर - छहढाल की रचना दौलतराम जी ने प्राचीन विद्वान बुधजन दास जी कृत छहढाल के आधार से की है।

प्रश्न ४. छहढाल की रचना कब हुई ?

उत्तर - छहढाल की रचना विक्रम सम्मत १८९१ की अक्षय तृतीय के दिन हुई।

प्रश्न ५. छहढाल के अन्त में क्या कहा है ?

उत्तर - छहढाल केअन्त में पंडित दौलतराम जी अपनी अल्पज्ञता प्रगट करते हुए तत्वज्ञान के प्रेमी विद्वज्जनों को सम्बोधित करते हैं कि कहीं प्रमाद या अज्ञान से शब्द या अर्थ की भूल रह गई ही तो संभाल कर पढना। इससे निश्चित ही भव समूद्र से तिर कर शाश्वत ज्ञानानन्द की प्राप्ति होगी।

छटवी ढाल का सारांश

प्रथम ढाल में चतुर्गति के दु:खों की विवेचना करने के अनन्तर द्वितीय ढाल में चतुर्गति दु:खो का मूल कारण मिथ्या दर्शन, मिथ्याज्ञान एवं मिथ्या आचरण बताते हुए तृतीय ढाल में दु:खो से सुरक्षा करने वाले सम्यग्दर्शन की सविस्तार विवेचना की है। चतुर्थ ढाल में सम्यग्ज्ञान एवं एक देश सम्यक चारित्र केअनन्तर पांचवी ढाल मं` वैराग्य वर्धक बारह भावनाओं की विवेचना करते हुये अन्त में यह कहा है कि यथार्थ धर्म मुनियों द्वारा ही धारण किया जाता है। उनका कर्तव्य, आचरण की विवेचना को ध्यान पूर्वक निज आत्मानुभूति की उपलब्धि केलिये सुनिय।

अत: पांचवी ढाल से सम्बन्ध जोडते हूए इस अन्तिम ढाल में मुनि मार्ग, मुनि धर्म अथवा मुनिराजों केअभ्यंतर बाहय कर्तव्य एवं व्यवहार निश्चय चारित्र अर्थात पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति , षट् आवश्यक , स्नान वर्जन आदि सप्त गुण, द्वाविंशति परिषह जय, द्वादश तप, षटक्राय जीव रक्षक आदि का विवेचन कर स्वरुपाचरण निश्चय चारित्र के कारण अन्तरंग हेतु भेद विज्ञान को बताकर निर्विकल्प स्वरुप स्थिरता, तन्मयता दिखाते हये शुध्दोपयोग रुप स्वरुपाचरण के साथ निराकुल आनन्द की अनुभूति एवं शुक्ल ध्यान की प्रवलता से ज्ञान की समीचीन परम विशूध्द केवलज्ञान पर्याय कीा विवचन करते हुये कल्याणकारी मोक्ष का उपदेश करते हुये अघाति कर्म नष्ट होने पर सादि अनन्त परम विशुध्द, अविनश्वर, अखण्ड, दिव्य चेतना स्वरुप सहज सिध्द पर्याय एवं अष्ठ कर्म केअभाव में सम्यक्त्वादि अष्ट

गुणों की प्राप्ति की है तथा शाश्वत अविनाशी पद का स्वरुप दिखाते हुए पश्चात अब पंच प्रकार भ्रमण का निषेध करते हुये ऐसी सुख दशा को बताकर मोक्ष मार्ग स्वरुप रत्नत्रय की महिमा के साथ साथ संसार केसमस्त भव्य जीवों को पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा देकर विषय-कषायों से दूर रहकर आत्मा स्वरुप में तल्लीन होने को सम्बोधीत किया है और अन्त में कहा है कि यदि यह अवसर हाथ से निकल गया तो फिर इसका मिलना बडा कठिन है। यह मनुष्य पर्याय राग रुपी आग में अनादि काल से इस जीव को जलाकर ध्वस्त करती आ रही है। हे भव्यात्माओ ! अब समता रुपी अमृत का सेवन करो। अनादिकाल से सेवित विषय कषायोंका त्याग कर अपने स्वरुप में निमग्न रहो, पर स्वरुप में रमण करके व्यर्थ ही क्यों दु:ख उपार्जन करते हो, अपने स्वरुप में रमण कर परमानन्द की प्राप्ति करो, यह बताते हुये अन्त में छहढाल कार ने रचना काल की विवेचना की है।

आगमानुसार छहढाल की स्याद्वादी टीका को मैने (श्री १०८ आचार्य सुमति सागर जी महाराज के परम शिष्य पूज्य १०५ ।J० सन्मति सागर जी महाराज वर्तमान में पंचम पट्टाचार्य) आज रक्षाबन्धन केपावन पर्व पर संसोधन केसाथ पूर्ण की है। प्रमाद या अज्ञान वश अगर कहीं भूल रही है तो सूचित करते हुये सम्यग्ज्ञान प्रेमी शोधन करते हुये पढें-पढायें।

किया स्वरुपाचरण से, पूर्व गुणों का लेख।

भेद ज्ञान सह स्वानुभव, सन्मति सुखद दिलेख ॥
श्रध्दा भक्ती युक्त हो, आगम केअनुसार।
छहढाल छहढाल में, स्याद्वाद का सार ॥

.२३९.

चारों ही अनुयोग से , लिया तत्व का सार।
वक्ता लेखक हूँ नहीं, पढना भूल सुधार ॥
वाल बोध हित हेतु से, प्रश्नोंत्तर में सार।
भाव सहित उल्लेख है, समझि लहो भव पार ॥
वाद विवाद कुवाद में, स्वाद धर्म का नाहिं।
स्याद्वाद पद सुखद है, सन्मति सुख निज माहिं ॥

स्याद्वादी टीका छटवीं ढाल
सिंहरथ प्रवर्तक पंचम पट्टाचार्य सन्मतिसागर जी महाराज द्वारा रचित

.२४०.

छहढाल ग्रन्थ की सार्थकता

छहढाल वास्तव में मन वचन काय से अपने जीवन में सत् श्रध्दान, ज्ञान और चारित्र को ढालने केलिये अनुपम सहारा है।

जैसे ढाल से बार रोकने का उपयोग होता है वैसे ही छह प्रकार केमनुष्यों को जीवन रक्षा में यह एक नहीं छह ढालें बताई है।

छह प्रकार से बोलने की पध्दति में ढाल चाल छन्द का प्रयोग किया गया है।

मनुष्य जीवन में छह प्रकार से मोड लेकर अपने कल्याण प्राप्ति में यह संकेत हैं कि मनुष्य की क्या दशा है।

प्रथम ढाल - संसार दशा पंच परावर्तन।

द्वितीय ढाल - संसार दुख का कारण।

तृतीय ढाल - संसार छूटने का उपाय आत्महित, श्रध्दान, ज्ञान चारित्र को सुधारना।

चतुर्थ ढाल - सम्यग्ज्ञान और उसकी क्रिया।

पांचमीं ढाल - अर्न्तप्रयोग, चिन्तन, मनन क्रिया।

छटवीं ढाल - मुनि मार्ग कर्तव्य द्वारा सहज स्वरुप की प्राप्ति।

ओम नम : सिध्देभ्य: